Foreword

My father late Shri. Jagdish Prasad Rajvanshi was a freedom fighter and was in Lucknow jail for 2.5 years during the 1942 freedom movement.

He wrote a book on his experiences in jail during that time. It was titled "Havalaat" and was written in Hindi and published in 1947.

The book is out of print and there have been many requests by quite a number of readers who remembered reading it earlier on.

I have digitized the book and put it on the net. nariphaltan.org/hawalaat.pdf The book you are reading is the result of that effort.

Shri. Jagdish Rajvanshi was born on 16 November 1918 and died on 4 March 2006. This year in November will be his birth centenary. Putting this book on the net is a small tribute to this remarkable man and an unsung hero of the freedom movement.

Shri. Jagdish Rajvanshi went to jail at a young age of 25 years. There were large number of such idealist youth who were inspired by Mahatma Gandhi and left their careers and future and joined the freedom movement. How I wish such a movement to come back again so that we can get rid of poverty, ignorance and hatred towards our countrymen.

I have written quite a bit about my father in my many books. Readers are encouraged to read about him in my autobiography: http://nariphaltan.org/mylife.pdf

I will be delighted to receive a feedback and comments on this book.

Warm regards,

Anil K. Rajvanshi
Phaltan
September 2018
anilrajvanshi@gmail.com

हवालात

लेखकः—
जगदीश राजवंशी एम. ए.

नेशनल पब्लिशर्स,
४१-नवलकिशोर रोड,
लखनऊ।

प्रकाशक
जगदीश राजवंशी एम. ए.
नेशनल पब्लिशर्स
४५ नवल किशोर रोड, लखनऊ।

Published in 1947

मुद्रक—
मदन मोहन शुक्ल 'मदनेश'
साहित्य-मन्दिर प्रेस लिमिटेड,
लखनऊ।

अध्याय १

मन शान्त न होगा,
पथ श्रान्त न होगा।
दम न लेंगे आज़ादी के दिन तक
माँ प्रण करते हैं।

रात को चार बजे यकायक टार्च का प्रकाश मेरे मुँह पर पड़ा। लिहाफ़ खींच कर कोई मुझ से रूखे स्वर में उठने के लिये कह रहा था ऐसा कुछ अर्ध निद्रावस्था में मैंने अनुभव किया। आँखें खोल कर जैसे ही उठ कर बैठा तो टार्च के प्रकाश में रिवालवर की नली दिखाई पड़ी और चार पाँच ऊँचे कद के पंजाबी सिपाही दरवाजे को घेरे खड़े थे।

यह मार्च सन् १९४३ की बात है। देहली में मार्च के महीने में काफ़ी ठंड पड़ती है। बिना लिहाफ़ के रात को सोना आसान नहीं। उस दिन मार्च की १३ तारीख़ थी। मेरा दोस्त, जिसका वह कमरा था पास में बैठा हुआ था। मालूम पड़ता था कि उसको उन्होंने मुझसे पहिले ही जगा लिया था। इस कमरे में वह अकेला ही रहता था। इस लिये एक ही पलँग उस कमरे में था। जब उसके मेहमान आजाते तो जमीन पर दरी के फ़र्श पर बिस्तर लगाकर सोना पड़ता। कुछ दिनों से एक लड़का उसके साथ रहता था। उसे कहीं मकान नहीं मिला था। वह राय साहब के 'वैन्गार्ड' नामक दैनिक पत्र में सहायक संपादक का काम करता था। जब कभी हमें रात को लौटने में ज्यादा देर हो जाती तो बहुत आवाजें लगानी पड़तीं। यह कमरा छत पर था

और इसके लिये रास्ता एक बड़े फाटक में से था। वहीं पर एक छोटा सा जीना था जिसके प्रारम्भ में पाखाना था और अन्त के छोर पर गुसलखाना था। रात को उस लड़के को जगाने के लिये कभी कभी दूध का कुल्हड़ फेंक कर मारना पड़ता था। कभी कभी आध घन्टे तक हम लोग आवाज देते रहते और उसके बाद धीमी सी आवाज से थोड़ी सी आशा मिल पाती।

इस लड़के का नाम ओ३म् प्रकाश था। उसने बी० ए० पास करने के बाद सिनेमा के किसी पत्र में कुछ दिनों तक सहायक सम्पादक का कार्य किया और अब उसको छोड़ कर एम० एन० राय के अखबार में चला गया था। एम० एन० राय आन्दोलन के जमाने में सरकार से मिल गया था। इसलिये छिप कर काम करने वाले लोग उसके साथियों को सी० आई० डी० समझते थे। यही कारण था कि ओ३म् प्रकाश को न मेरा नाम मालूम था और न यह मालूम था कि मैं क्या करता हूँ। वह मुझे सुरेश के नाम से जानता था और सिर्फ यह जानता था कि मैं यज्ञदत्त का कालिज और यूनीवर्सिटी का पुराना साथी हूँ। हम भी इस बात का ध्यान रखते थे कि जिस समय वह वहाँ पर हो अधिक देर तक वहाँ न रुकें। बात चीत के सिलसिले में कुछ आभास मिल जाने का डर रहता था।

उस रात को मैं ११। बजे लौट कर आया था। कमरे पर जब पहुँचा तो देखा कि वहाँ पर एक अधेड़ उम्र का, तथा भारी शरीर का, गाँव का एक व्यक्ति बैठा हुआ है। मैंने पूछा, 'आप कौन ?'

"मैं यज्ञदत्त का मामा हूँ ! यज्ञदत्त अभी वापिस नहीं आया ?"

मैंने कहा, "जी नहीं; हम दोनों पुराने किले गये थे। आज उसका कैन्टीन खत्म हो रहा है। वह अपने साझेदार के साथ हिसाब कर रहा है। उसे आने में देरी थी और मुझे कुछ थोड़ा सा काम था, इसलिये मैं चला आया।"

जरा रुक कर मैंने पूछा "हाँ ! यह बताइये आपने खाना खाया या नहीं ?"

उन्होंने सीधे सादे स्वर में उत्तर दिया, 'नहीं अभी तो नहीं खाया, लेकिन मैं बाजार में जाकर खा लूंगा।'

मैंने कहा, 'आप इस वक्त कहाँ जाने की तकलीफ करेंगे और अभी मैंने भी खाना नहीं खाया है। मैं तो रोटी खाने जा ही रहा हूँ, उधर से ही आपके लिये पूरी भी लेता आऊँगा। आप आराम कीजिये।"

पास में रोटी वाले की एक दुकान थी। एक आने की एक मोटी रोटी और दाल मुफ्त में मिलती थी। उसी के यहाँ गरम गरम दो रोटियाँ खाईं और फिर मामाजी के लिये पूरी लेने चल दिया। पाव भर पूरी खरीदने के बाद मुझे ख्याल आया कि मामाजी गाँव से आये हैं, ब्राह्मण हैं, चलो इनके लिये कुछ मिठाई भी ले चलो। कचौरी वाले की दुकान के पास ही एक मिठाई वाले की दुकान थी। उसी से मैंने आध पाव मलाई लेने का निश्चय किया। दुकान पर पहुँच कर मैंने दुकानदार से कहा, "भाई, आध पाव मलाई दे दो"!

जब मैं उसको मलाई तौलते हुए देख रहा था उसी समय एक आदमी काला कोट और पायजामा पहिने हुए उस दुकान पर आया और इस प्रकार खड़ा होगया कि उसके मुख पर बिजली का सीधा प्रकाश न पड़े। उसने एक अजीब ढंग से मेरी तरफ देखा। मुझे कुछ शक हुआ। मैंने उसे गौर से देखना शुरू किया। उसने अपनी आँखें नीची कर लीं। जेब से एक आना निकाल कर उसने हलवाई की थाली में फेंक कर कहा, "एक आने की मलाई देना।"

वह शेड के अर्द्ध प्रकाश में खड़ा हुआ था। उसका मुंह पिचका हुआ था, दाढ़ी बढ़ी हुई थी, मुछें अजीब टेढ़ी मेढ़ी सी थीं जिससे मालूम पड़ता था कि उसने कभी उन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। मैंने सोचने का प्रयत्न किया कि उसे कभी कहीं देखा तो नहीं है। थोड़ी देर तक देखने के पश्चात् यह निश्चय हो गया कि वह चेहरा पहिले

कभी नहीं देखा है। यह अनुभव करके सन्तोष हुआ कि अगर यह सी० आई० डी० का आदमी है भी, तो जब मैं इसे नहीं पहचानता तो यह मुझे कैसे पहिचानेगा।

मलाई लेने के बाद जब पहिले मोड़ पर मुड़ा तो मैंने सावधानी से जरा सा मुड़ कर पीछे देखा किन्तु मेरे पीछे कोई नहीं दिखाई पड़ा। मैं फिर निःशंक होकर बढ़ता चला गया। मुझे किसी भी प्रकार का ऐसा सन्देह नहीं रहा जिससे मैं विशेष सतर्क होजाऊँ और उस जमाने में और उस जीवन में प्रायः धोखा भी होजाता था। बिना वजह शक हो जाया करता था।

जब मैं कमरे में पहुँचा तो यज्ञदत्त भी वापिस लौट आया था। मामा और भानजे आपस में बैठे घर की बातें कर रहे थे। पूरी का दोना मामाजी की ओर बढ़ाते हुए मैंने यज्ञदत्त से पूछा, "तुम्हारा हिसाब किताब ठीक होगया?"

उसने बड़े उपेक्षापूर्ण भाव से उत्तर दिया, "यार! हिसाब किताब तो हो ही गया, लेकिन, मैंने तो भाई, कान पकड़ लिया। चाहे दो पैसे का काम कर ले, लेकिन साझे का काम न करे। जनाब! शर्मा शर्मी में दबते भी जाइये और दूसरा फिर भी यही समझता रहता है कि यह पैसा खागया, इसने मुझे धोखा दिया। चलो आज बला टल गयी। अब जरा आजादी की साँस लेंगे। जनाब! ५००) रु० तो पहिले दे चुका हूँ और २००) रु० अभी और हिसाब में बाकी रह गये जो देने को हैं। यह सब कुछ फायदा इस कैन्टीन से हुआ।"

मैंने कहा, "लेकिन कैन्टीन से नुकसान तो होना नहीं चाहिये।"

'नुकसान,' उसने बीच में रोक कर कहा। "भाई, साझे में तो नुकसान जरूर होगा। उनका तो हाल यह था कि कभी न वहाँ जाने से मतलब और न काम देखने से मतलब। किसी किसी दिन गये, जितना पैसा गल्ले में मिला निकाल कर ले आये। कहाँ लिखा गया, कहाँ हिसाब है, इसका कुछ पता नहीं। नौकरों का भी यही हाल था।"

"खैर!" बीच में ही बात काट कर मैंने पूछा, "तुम खाना खा चुके या तुम्हारे लिये भी पूरी ले आऊँ।"

"खाना तो मैं नहीं खाऊँगा। वहाँ पर बहुत सामान बच गया था। कुछ बाँट दिया और मैंने भी उसी में से खा लिया। अब भूख बिलकुल नहीं है।

मामाजी खाना खाने में व्यस्त थे। मैं बहुत सी बातें सोच रहा था। इस प्रकार छिप कर रहने के जीवन में कैसे कैसे स्वाँग भरे हैं; कहाँ कहाँ रहा हूँ और कितनी बार लोगों को अपना पूर्ण परिचय पाने से वंचित रखा है।

यह कैन्टीन भी खूब था। दिल्ली में ओकले को जो सड़क जाती है उस पर नई दिल्ली का पुल पार करने के बाद हँडिया महाराज का पवित्र स्थान है और उसके बाद यह पुराना किला है। कहा जाता है कि यह हुमायूँ का किला है। इसी में एक लाइब्रेरी थी जिसके ज़ीने से गिर कर हुमायूँ मर गया था। अब यह किला जीर्ण अवस्था में है, चारों तरफ की चहारदिवारी भी जगह जगह से गिर गई है। किन्तु अन्दर अब भी मुगल वैभव की कुछ अवशिष्ट इमारतें बाकी हैं।

लड़ाई छिड़ने के बाद हिन्दुस्तान में जितने जापानी थे वे सब पकड़ लिये गये। उनके स्त्री बच्चे सब पकड़ कर बन्द कर दिये गये थे। जिससे वे बाहरी दुनिया से सम्पर्क न रख सकें। इसलिये उनको दिल्ली के पुराने किले और देवली की जेल में बन्द कर दिया गया था। किले में इतनी इमारतें नहीं थीं कि सारे कैदी और कैदियों की देख भाल करने वाले सब लोग एक साथ रह सकें; इसलिये चहारदिवारी के भीतर काँटेदार तारों से दोहरा बाड़ा बना दिया गया था। अन्दर के बाड़े में कैदियों के रहने के लिये खेमे गाड़ दिये गये थे और दोनों बाड़ों के बीच में सँकरा रास्ता छोड़ दिया गया था। इस सँकरे रास्ते में हिन्दुस्तानी सिपाही अपनी राइफ़िल कन्धे पर रखे ब्रिटेन के दुश्मनों की देख भाल दिन रात किया करते थे।

किले के चारों तरफ गहरी खाई है। दरवाजे के अन्दर जाने के बड़े फाटक के सामने बड़ा मैदान है। इसमें भी खेमे गड़े हुए थे और इनमें हिन्दुस्तानी और अंग्रेज फौजें रहती थीं। किले के भीतर भी बाड़े के सामने बहुत से डेरे लगे हुए थे जिनमें कैदियों की निगरानी करने वाली हिन्दुस्तानी फौज रहती थी।

जिस दीवार में बड़ा दरवाजा था। उस में अन्दर की तरफ दीवार की पूरी लम्बाई में कोठरियाँ बनी हुई थीं। बहुत से सिपाही इन्हीं कोठरियों में रहते थे। इनमें से कुछ कोठरियों को बंदूकें रखने के काम में लाया जाता था और कुछ कोठरियों को अस्पताल बना दिया गया था।

दरवाजे के ऊपर भी तीन चार कोठरियाँ बनी हुई थीं। इन्हीं कोठरियों को कैन्टीन के लिये दे दिया गया था। यह कैन्टीन अन्दर रहने वाली फौज के लिये बनाया गया था। इसमें ज्यादातर सिगरेट, बीड़ी, गुड़, पान, मिठाई, दूध का सामान इत्यादि चीजें रहती थीं। 'आर्मड गार्ड' के सिपाही यहाँ पर आकर चाय पीते, गुड़ खाते और आपस में एक दूसरे से प्रेम प्रदर्शित करने वाले बाजारू टाइप के मजाक किया करते थे।

कभी कभी उनके अफसर भी चाय पीने और सिगरट खरीदने चले आते थे। अफसरों का हिसाब उधार खाते से चलता और बार बार आदमी भेजने पर भी उनसे पैसा नहीं मिलता था। फिर, अफसर और उनकी कम्पनियों की जल्दी जल्दी बदली होती रहती थी। इस लिये, यह भी डर रहता था कि अगर बदली होगई तो पैसा भी मारा गया। फिर पुलिस के अफसर और सन् ४२ का जमाना! न कहीं कोई सुनवाई होती और न कहीं फरयाद। खुशामद और आजिजी से जो मिल जाय वही बहुत था।

किले में अन्दर जाने के लिये रास्ता केवल बड़े फाटक में से था। ओकले वाली सड़क से बाईं तरफ को एक सड़क कटती, है यह सीधी

चढ़ती हुई फाटक को चली जाती है। इस सड़क का ढाल इतना अधिक है कि ताँगा बड़ी मुश्किल से चढ़ पाता है। खाली ताँगे को खींचने में घोड़ा हाँफ जाता था। दरवाजे पर संगीन का पहरा था। दरवाजे से १०० कदम रहने पर ही सन्तरी चिल्ला कर आवाज लगाता 'हालटू कमदार'। अंग्रेजी के शब्दों का वह ठीक ढंग से उच्चारण नहीं कर पाता था। हमारा दोस्त वहीं से जवाब देता, "ठेकेदार, और उसके आदमी"। पास दिखाने का प्रायः मौका ही नहीं पड़ता था। वह पास चार आदमियों का था। चार आदमियों के नाम उस पर लिखे हुए थे। हम लोगों ने ये नाम रट लिये थे। अगर पूछने का मौका पड़े तो जल्दी से बता सकें, किन्तु कभी इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी। किले के बाहर और अन्दर सादी वर्दी वाले सी० आई० डी० भी काफी संख्या में रहते थे। हम लोग हमेशा सूट में जाते थे।

फाटक के अन्दर घुसते ही बाईं तरफ को एक पतला सा सीधा जीना फाटक के ऊपर कैन्टीन को जाता था। इस जीने से चढ़ कर हम लोग फाटक की किले की तरफ वाली दीवार पर पैर लटका कर बैठ जाते थे और नीचे काँटेदार तारों में बन्द जापानियों के कार्यों को घण्टों बैठे देखा करते थे।

इस कैदखाने में वे जापानी बन्द थे जो भारतवर्ष में रहते थे, जो यहाँ तिजारत या और कोई काम करते थे। इनमें से कुछ अपने कुटुम्ब सहित रहते थे और बाकी बिलकुल अकेले। डेरे लगे हुए थे। उन डेरों में या तो एक कुटुम्ब रहता था या चार पाँच आदमी मिल कर रहते थे। ये लोग बौद्ध होते हैं और सूर्य्य के उपासक। सन्ध्या काल में गेरुआ वस्त्र पहिने हुए और लकड़ी की चट्टी धारण किये गोल ढपली बजाते हुए तीन चार साधू जापानी भाषा में गीतों का उच्चारण करते हुए डेरों के चारों ओर चक्कर लगाया करते थे। यह कार्य वे लोग सूर्य्यास्त होने से एक घण्टा पहिले से शुरू करते और आध घण्टे बाद तक किया करते थे।

उसी काल में जापानी कैदी अन्य कार्य करते रहते। नौजवान लोग पिंग पांग या फुट बाल खेलते। लड़कियाँ और बूढ़े लोग टहलते रहते। एक फर्लांग का उनका घेरा था। उसी में वे बार बार चक्कर काटते। घूमती हुई लड़कियों को पहरे वाला सिपाही बड़ा घूर कर देखता और जब वे उसके पास से निकलतीं तो उसकी पहरे देने की गति में थोड़ा अन्तर होजाता। कभी कभी मुस्करा कर वह कोई सभ्य बात कहता और उसका उसे उत्तर भी मिल जाता। सब जापानी नाटे कद के तन्दुरुस्त थे और लड़कियाँ भी नाटे कद की थीं और विदेशी ढंग की पोशाक पहिने रहती थीं। दो दो या तीन तीन का गुट बना कर शाम को वे लोग घूमा करती थीं।

सूर्यास्त के बाद उन लोगों का खाना आता था। बाल्टियों में भर कर कुछ तरकारी या अन्य रसेदार कुछ चीजें होती थीं जो किले की दीवार से ठीक ठीक दिखाई नहीं पड़ती थी और चावल। एलूमीनियम के तसले जैसे बर्तन लेकर वे लोग अपने डेरे से बाहर आते और अपना खाना लेकर फिर अन्दर चले जाते। जब वे लोग अपना खाना शुरू करते तो वहाँ सन्नाटा सा होजाता था। अब न खेलनेवाला कोई दिखाई पड़ता और न कोई घूमने वाला ही, किन्तु किले की उस दीवार से उठने को तब भी मन नहीं करता। सम्भवतः उन कैदियों के जीवन को देख देख कर मैं अपने आने वाले जीवन से उसका समतुलन किया करता था। बिना कारण बताये बिना दोषी ठहराये, बच्चों, स्त्रियों और बूढ़े आदमियों को बन्द कर देना। दिनों, महीनों और वर्षों की कोई अवधि नहीं। इसी दायरे में रहना, बीमार पड़ना और प्रायः मर भी जाना। वही रोजाना का कार्य क्रम, संगीनों की छाया के नीचे। आदमी आदमी का दुश्मन! खून और घृणा से पूर्ण, संसार के सारे देशों का इतिहास उस काल में ऐसे विकृत रूप में परिणत होगया था।

अध्याय २

उसी अर्द्ध निद्रा में कुछ अनुभव हुआ कि किसी ने स्विच का बटन दबा कर रोशनी की, और फिर किसी ने मेरा लिहाफ खींच कर उठने का आदेश दिया। एक बनियान और एक अन्डर वियर पहिन कर मैं सो रहा था। बिजली की रोशनी में कुछ आँखों को खोलता हुआ जैसे ही उठकर मैंने यह जानने का प्रयत्न किया कि यह सब कुछ क्या और क्यों हो रहा है तभी दो आदमियों ने लपक कर मेरे तकिये को उठा कर देखा कि उसके नीचे तो कुछ नहीं है। लिहाफ खींच कर उन्होंने एक तरफ डाल दिया।

आँख खोल कर जैसे ही देखा तो यज्ञदत्त पास में बैठा हुआ है और उसकी बगल में मामाजी बैठे हैं। सामने दो दारोगा रिवाल्वर लिये हुए हैं और चार पाँच आदमी सलवार, कोट पहिने और पंजाबी ढंग का साफा लगाये खड़े हैं। सबके सब लोग एकटक घूर कर मेरी तरफ देख रहे थे मानों मैं कोई भयंकर जानवर हूँ और आँख हटाते ही उन पर वार कर दूँगा।

दारोगा ने कड़े स्वर में पूछा, 'तुम्हारा क्या नाम है?'

मैंने स्वाभाविक रूप में उत्तर दिया, 'सुरेशचन्द्र।'

दारोगा ने फिर पूछा 'यहाँ क्या करते हो?'

'मैं यहाँ नहीं रहता' मैंने तुरन्त उत्तर दिया, "मैं मेरठ में रहता हूँ और वहीं एम० ए० फाइनल में हूँ। यहाँ पर मैंने जी० एच० क्यू० के दफ्तर में नौकरी के लिये दरख्वास्त दी थी और अब उसी की बाबत मालुम करने आया था कि लिया गया या नहीं।'

चारपाई पर बैठते हुए दारोगा ने पूछा, "यहाँ तुम कब आये ?"

"कल सुबह आया था और कल ही वापिस चला जाना चाहता था किन्तु यज्ञदत्त ने कहा कि एक दिन और रुक जाओ इसलिये घूमने के ख्याल से रुक गया।"

इस बीच एक निगाह डाल कर मैंने यज्ञदत्त और मामाजी की ओर देखा। यज्ञदत्त अपने सामने की ओर अज्ञात भाव से देख रहा था। सम्भवतः वह सोच रहा था कि यह क्या हुआ ? क्या करें ? मामाजी दारोगा को और मुझे बारी बारी से देख रहे थे। वे मेरी बाबत कुछ भी नहीं जानते थे और अब कुछ घण्टों की पहली ही मुलाकात में यह सब कुछ क्या होगया, यह कुछ उनकी समझ में नहीं आ रहा था। यज्ञदत्त मामाजी की ओर देखकर हलकी सी व्यंग भरी हँसी हँसा। मुझे भी कुछ हँसी सी आ गई मामाजी की इस बेबसी की हालत पर।

सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर ने सोचने का ज्यादा मौका न देकर फिर प्रश्न किया "मेरठ में कहाँ रहते हो ?"

'न्यू हाउस में।' मैंने बिलकुल स्वाभाविक रूप से उत्तर दे दिया मानों मैं वहीं पर रहता हूँ।

"वहाँ का तुम्हारा क्या पता है ?"

'१६ नं० हाउस, मेरठ कालिज, मेरठ।' मैंने उसके प्रश्न का उत्तर देकर सिर नीचा कर लिया। कुछ ठंड सी लगने लगी थी इसलिये मैंने अलवान खींच कर पैरों पर डाल लिया। और फिर नये प्रश्न और नये उत्तर के विषय में थोड़ा सोचने लगा। हृदय की गति कुछ तीव्र होगई थी। उत्तर देने में कृत्रिमता न आजाय इसलिये उत्तर धीरे धीरे और थोड़े शब्दों में देरहा था।

इन्स्पैक्टर ने पूछा, "यज्ञदत्त को तुम कैसे जानते हो ?"

मैंने कहा, 'यज्ञदत्त मेरठ कालिज में बी० ए० में मेरे साथ था।'

'लेकिन यज्ञदत्त को एम० ए० पास किये हुए दो साल होगये और तुम अभी एम० ए० में पढ़ ही रहे हो। तुम्हारा और यज्ञदत्त का साथ मेरठ कालिज में कैसे था ?' वास्तव में वह प्रश्न वह पूछेगा, मैं सोच भी न पाया था।

किन्तु उत्तर देना आवश्यक था। मैंने कहा "हाँ ! हम लोग साथ ही थे। यज्ञदत्त पास होता गया और मुझे एक क्लास में दो दो तीन तीन साल मेहनत करनी पड़ी। यही वजह है कि यज्ञदत्त एम० ए० पास हो गया और मैं अभी तक एम० ए० में ही पढ़ रहा हूँ।" उत्तर ठीक बन आया था। इसमें सन्देह करने के लिये उसके पास कोई कारण नहीं था।

नायब दारोगा भी बिस्तर पर पाँवतले बैठ गया था। सी० आई० डी० के दूसरे लोग भी दरवाजे में पड़े पायदान और फर्श पर बैठ गये थे। प्रभात का प्रकाश धीरे धीरे बढ़ता जा रहा था। बिजली का प्रकाश धीरे धीरे लाल होरहा था। कमरे में चारों तरफ निगाह डाल कर देखने पर पलँग के सिरहाने एक थैला लटका हुआ इन्स्पेक्टर ने देखा। उसने थैला उठा लिया। उसमें रखी चीजों को वह धीरे धीरे निकाल कर बिस्तर पर रखने लगा। मैं और यज्ञदत्त उसके इस कार्य को देखने लगे। मामाजी विशेष व्यग्रता से देख रहे थे। यह मामा का थैला था और उसमें कुछ दवाओं की पुड़ियाँ थीं, जो मामाजी ने गत सन्ध्या को खरीदी थीं। मामाजी अपने गाँव में दवायें ले जा रहे थे। वे गाँव में दो चार चूर्ण और दो चार अन्य दवाइयाँ बाँटते हैं। इन्हीं दवाओं के आधार पर गाँव वालों ने उन्हें 'वैद्यजी' की उपाधि प्रदान कर दी है। इसके कारण उनका गाँव में काफी सम्मान है।

पुड़ियाँ निकालने के बाद इन्स्पेक्टर ने पूछा, "यह किसका सामान है ?"

मामाजी जो बड़ी उत्सुकता से दारोगा की ओर एकटक देख रहे थे, तुरन्त बोले, 'यह साहब मेरी दवाइयाँ हैं' कल शाम को मैंने

खरीदी थीं और गाँव को ले जा रहा था । और एक एक करके वे सब दवाओं का नाम बताने लगे ।

वास्तव में अभी तक इन्सपेक्टर ने यज्ञदत्त का केवल नाम पूछा था और बाकी समय में वह मुझसे ही सवाल पूछता रहा । अब उसका ध्यान मामाजी की ओर गया । देहाती ढंग की पोशाक पहिने मामाजी हम सब से अधिक तन्दुरुस्त थे । व्यंग करते हुए उसने मामाजी से कहा, 'अच्छा ! यह दवाइयाँ खा खा कर ऐसे तन्दुरुस्त होरहे हैं ।"

मामाजी ने इस व्यंग का कोई उत्तर नहीं दिया, केवल इतना ही जवाब दिया, "मैं यह दवाइयाँ तो गाँव में बाँटता हूँ ।"

इन्सपेक्टर ने फिर मामाजी से प्रश्न किया, "कहिये आप तो शाम को ही घर जानेवाले थे फिर यहाँ कैसे रुक गये । आपका काम तो शायद खत्म ही हो गया था ?"

मामाजी सकपकाये, "हाँ ! काम तो खत्म होगया था । स्टेशन पर जब मैं पहुंचा तो ७॥ बजे वाली गाड़ी चली गई थी । दस बजे वाली गाड़ी रात को १॥ बजे पहुँचती है फिर सोचा कि यज्ञदत्त से मिले हुए बहुत दिन होगये हैं चलो मिल भी आऊँ ।

"हाँ ! तो मिले हुए कितने दिन होगये थे ?" दारोगा ने फौरन ही प्रश्न किया ।

"करीब ढाई साल होगये होंगे ।"

"हाँ ! इस ढाई साल के बीच में आप दिल्ली कितनी बार आये होंगे ?"

"दिल्ली तो मैं कई बार आया लेकिन काम करके वापिस चला गया, मिलने का कभी मौका नहीं मिला । एक दो बार यहाँ आया तो वे यहाँ पर नहीं थे ।"

"अच्छा तो अबकी ही बार मिलने का मौका मिला !"

मामाजी ने घबराहट के साथ केवल एक शब्द में उत्तर दिया, 'जी ।'

इसी बीच फर्श पर बैठे हुए एक सी० आई० डी० वाले ने कहा "मामाजी तो बड़े गहरे मालूम पड़ते हैं ।"

मामाजी उस सी० आई० डी० वाले की ओर कुछ किंकर्तव्य विमूढ़ से देखने लगे ।

मैंने यज्ञदत्त की ओर देखा । उसने जरा सी व्यंगपूर्ण मुसकराहट के साथ माथे पर हाथ मार कर यह प्रदर्शित किया कि कमबख्ती के मारे मामाजी को भी आज ही आना था ।'

मामा जी से सवाल पूछने के बाद फिर उसने मुझसे प्रश्न पूछना शुरू किया, 'तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?'

मेरे पिता जी का नाम, 'रामप्रसाद है ।'

"उनका क्या पता है ? वे क्या करते हैं ?"

मैंने उत्तर दिया, "ज़िला बुलन्दशहर में चांदपुर नाम के गांव में रहते हैं और वहीं पर वे ज़मींदार हैं ।"

धीरे धीरे दिन का प्रकाश बढ़ता जा रहा था । इस पूछताछ में और उससे पहले की पकड़-धकड़ में पर्याप्त समय लग चुका था । इन्सपेक्टर और उसके साथी अलसाई अवस्था में जम्हाई सी लेने लगे थे । इन्सपेक्टर ने सी० आई० डी० के एक आदमी को नाम लेकर पुकारा और कहा, 'जा ज़रा चाय तो ले आ ।' वह सी० आई० डी० का आदमी और उसके साथ मुसलमान होटल का एक मालिक जो सी० आई० डी० वालों के बीच में था वहाँ से चले गये । होटल के मालिक को इन्सपेक्टर शायद इसलिये पकड़ लाया था कि खाना तलाशी के समय एक दो आदमी की जो आवश्यकता होती है, उसकी पूर्ति हो जाय ।

थोड़ी देर के लिये कमरे में बिलकुल निस्तब्धता छा गई थी । दारोगा और उसके साथी थकान अनुभव कर रहे थे और चाय की इन्तजारी में थे । मैं और मेरे साथी उस समय कम से कम बोलना चाहते थे । डर था कि कहीं बोलने में कोई बात ग़लत न कह जायँ ।

वास्तव में झूठ तो हर एक बात बता ही रहे थे। किन्तु एक झूठ को दूसरे झूठ के साथ इस प्रकार सम्बन्धित करना पड़ता था कि बिना छानबीन और प्रमाणों के कोई इसे झूठ न ठहरा सके।

इन्सपेक्टर ने आँख घुमा कर फिर से सारे कमरे की वस्तुओं को देखा। कमरे में अलमारियों और दीवारगीरों पर किताब और पत्रिकायें कुछ कायदे से और कुछ बेकायदे रखी हुई थीं। एक कानिस पर कागज़ों और ख़तों का बहुत बड़ा ढेर लगा हुआ था। यज्ञदत्त ने प्रेस का काम किया था और उसके साथ एक पत्रिका भी निकाली थी। वह पत्रिका बन्द हो गई थी और उस प्रेस का काम भी उसने बन्द कर दिया था, किन्तु उस काल में किये गये प्रयत्नों के साक्षी पत्रों का एक ढेर अब भी वहाँ मौजूद था। इन्सपेक्टर ने नायब से कहा, 'चौधरी साहब, पहले चाय पी ली जाय फिर यह सब देखा जायगा। यहाँ तो मालूम पड़ता है, अभी काफी वक्त लगेगा। देखिये ख़तों और किताबों का कितना बड़ा ढेर यहाँ मौजूद है; यह सभी तो देखना पड़ेगा।'

थोड़ी ही देर में सी० आई० डी० का आदमी होटल के एक नौकर को चाय की ट्रे के साथ लिवा लाया। ट्रे में छः सात प्याले थे, और पर्याप्त मात्रा में टोस्ट और पेस्ट्री थी। चाय की ट्रे फ़र्श पर रखकर होटल का नौकर बाहर जाकर खड़ा हो गया। सी० आई० डी० वाले ने चाय बनाकर प्याला इन्सपेक्टर की तरफ़ बढ़ाया। प्याला हाथ में लेते हुए इन्सपेक्टर ने कहा, 'देखो, इनको भी एक प्याला चाय दो, शायद ठण्ड लग रही होगी।'

मैंने कहा, "जी नहीं, आप लोग चाय पीजिये। मुझे तो अभी चाय पीने की ख़्वाहिश नहीं है।"

सी० आई० डी० वाले ने चाय का दूसरा प्याला तैयार करके मेरी तरफ़ बढ़ा दिया। इन्सपेक्टर ने कहा, "लीजिये एक प्याला चाय पी लीजिये।"

उस वातावरण में कुछ भी खाने या पीने की तनिक भी इच्छा नहीं थी और फिर वह चाय पुलिसवालों के द्वारा मंगाई गई थी किन्तु उस समय और इनकार न करके चाय का प्याला मैंने ले लिया। टोस्ट और पेस्ट्री की तश्तरी सी० आई० डी० वाले ने मेरी तरफ़ बढ़ाई। मैंने इनकार करते हुए कहा, 'अभी तो मैंने मुंह हाथ भी नहीं धोया है। सुबह सुबह कुछ खाऊँगा नहीं।'

इसके बाद इन्सपेक्टर और उसके सब साथी चाय पीने में व्यस्त हो गये। धीरे धीरे प्लेट खाली होने लगे। केतली में चाय की चन्द बूंदें जब तक रहीं तब तक उसको उलट कर चाय निकाली गई। दूध और शकर भी सब समाप्त हो गई थी। ख़ाली बर्तन को लौटाने के लिये होटल के नौकर को एक सी० आई० डी० वाले ने आवाज़ दी। नौकर बाहर ही खड़ा हुआ था। वह बर्तन उठाकर चल दिया। एक बार बर्तन उठा कर नौकर ज़रा रुका था, शायद इस उम्मेद में कि चाय के दाम उसको दिये जायंगे। लेकिन उसमें माँगने की हिम्मत थी नहीं। धीरे धीरे कमरे से पैर बढ़ाता हुआ वह वहाँ से चला गया।

चाय पीने के बाद इन्सपेक्टर ने अलमारी में रखी किताबों को देखना शुरू किया। किताबें कुछ अंग्रेज़ी और अधिकतर हिन्दी की थीं। किताबों का संग्रह एक विचित्र रूप का था। उपन्यास, नाटक, कहानियाँ, अर्थशास्त्र इत्यादि भिन्न भिन्न विषयों की वे पुस्तकें थीं। किताबों को एक दो बार देखने के बाद इन्सपेक्टर ने सी० आई० डी० के आदमी से कहा, "ये ख़त और कागज़ सामने फ़र्श पर लाकर डाल दो।"

सी० आई० डी के सिपाही उठे और हाथों में भर भर कर कागज़ों और पत्रों के बंडल फ़र्श पर डालने लगे। हम लोग चुपचाप बैठे हुए यह सब तमाशा देख रहे थे। सी० आई० डी० वाले ऊपर से ही कागज़ों का ढेर फेंक रहे थे। कागज़ इधर उधर सारे कमरे में बिखर रहे थे।

काग़ज़ों को उलट-पलट कर इन्सपेक्टर ने पढ़ने का प्रयत्न किया। अधिकतर पत्र और काग़ज़ हिन्दी में लिखे हुए थे। इन्सपेक्टर मुसलमान था; वह हिन्दी बिलकुल नहीं जानता था। उसने हाथ के लिखे कुछ काग़ज़ उठा कर सब-इन्सपेक्टर को देते हुए कहा, "चौधरी साहब ज़रा देखिये, ये कैसे काग़ज़ हैं।"

सब-इन्सपेक्टर ने काले चश्मे का बक्स निकाल कर एक काली कमानी का मोटे शीशों वाला चश्मा पहिन कर उन काग़ज़ों को पढ़ने का प्रयत्न किया, किन्तु हिंदी की लिपि पढ़ना उसके लिये भी इन्सपेक्टर साहब के समान ही कठिन था। दो चार शब्दों को पढ़ने के बाद उसने कहा, "इन्सपेक्टर साहब, यह हिन्दी की घसीट में लिखा हुआ है, इसका पढ़ना मुश्किल है।"

वास्तव में दिल्ली की पुलिस पांच साल के लिये पंजाब प्रांत से डेपुटेशन पर आया करती है। इसलिये पुलिस के कर्मचारी अधिकतर मुसलमान या सिख होते हैं। ये लोग स्कूल में उर्दू पढ़ते हैं और हिन्दी से प्रायः अनभिज्ञ ही रहते हैं।

अब इन्सपेक्टर ने सी० आई० डी० वाले सिपाही से कहा, 'जाओ, देखो महन्त जी अब अपनी पूजा पाठ से खाली हो गये होंगे; उनको बुला लाओ। उनसे कहना कि इन्सपेक्टर साहब ने आपको बुलाया है।'

सी० आई० डी० का सिपाही महंत जी को बुलाने चला गया। इस बीच में इन्सपेक्टर और उसका नायब काग़ज़ों के ढेर को उलट पलट कर हस्तलिखित पत्र और काग़ज़ निकाल कर एक जगह इकट्ठा करने लगा। पास में बैठे हुए दूसरे सी० आई० डी० के आदमी भी इस कार्य में उसको मदद कर रहे थे। मैं सोच रहा था कि अच्छा है; चलो, काग़ज़ों के जंगल में ये कुछ देर तो भटकते ही रहेंगे।

थोड़ी देर बाद सी० आई० डी० वाला महंत जी को लेकर ऊपर आ पहुंचा। महंत जी ने एक दृष्टि हम लोगों पर डाली और फिर

हाथ उठा कर, घबराई हुई दशा में, इन्सपेक्टर को नमस्कार किया। इन्सपेक्टर ने महंत जी के नमस्कार का उत्तर देकर कहा, "आइये महंत जी, तशरीफ़ लाइये।"

सब-इन्सपेक्टर ने ज़रा खिसक कर महंत जी के बैठने के लिए थोड़ी सी जगह कर दी। महंत जी दोनों इन्सपेक्टरों के बीच में हमारी तरफ़ मुँह करके बैठ गये, बिलकुल चुपचाप। सम्भवतः अज्ञात परिस्थितियों से उत्पन्न हुई दुर्घटना से आशंकित होकर !

यह मकान जिसके एक कमरे में हम रहते थे वास्तव में इन्हीं महंत जी का था। महंत जी लगभग ३५ वर्ष के थे। गोरे वर्ण के, लम्बे कद के और सुन्दर व्यक्ति। उनके कपड़े और रहन-सहन साधुओं या महंतों का न होकर रईसों और ताल्लुकेदारों का सा था। कपड़े भी वे वैसे ही पहिनते थे। बाल भी अँगरेज़ी ढङ्ग के रखते थे, हाथ में घड़ी, अँगूठी भी थी। मूछें साफ़ थीं। हाँ, नीचे मकान में एक मंदिर है और पहिले महाराज की गद्दी है। पूजा पाठ वे अवश्य करते हैं; किन्तु, वह भी एकान्त में। फूल पत्ती और जल चढ़ाने के लिये वे नीचे आते हैं। कोई भी आदमी नहीं कह सकता कि ये महंत जी हैं। बोलचाल में बहुत मीठे हैं और कभी-कभी हम लोग इनसे काफी देर तक बातचीत किया करते थे। यज्ञदत्त प्रायः मज़ाक़ में कहा करता था, "अगर इसके मकान में तुम पकड़े गये तो महंत भी पकड़ा जायगा। चलो, जेल में बड़े मजे की कटेगी। मुझे तो महंत की शकल देख देख कर हँसी आया करेगी।"

और आज वास्तव में महंत ऐसी ही परिस्थिति में फंस गया था। मुझे भी यज्ञदत्त की वह बात याद करके हंसी आ रही थी। हंसी रोकने के लिये मुँह पर हाथ रखकर मैं यज्ञदत्त की ओर देखने लगा। वह भी नीचा सिर किये हुए मुस्करा रहा था।

दारोगा ने पूछा, "महंत जी, यह बतलाइये कि आप इन लोगों को कब से जानते हैं ?"

महंत जी ने सिर ऊपर उठाया, "इन लोगों से आपका क्या मतलब ? मैं तो केवल यज्ञदत्त जी को जानता हूँ । ये करीब एक साल से मेरे मकान में रह रहे हैं और मेरा एक साल का इनके साथ सम्पर्क है । इस बीच में मैंने पाया कि ये बिलकुल सज्जन व्यक्ति हैं । हर महीने मेरा किराया दे देते हैं । कभी किसी बात की इनसे मुझे कोई शिकायत नहीं हुई । और लोगों की बाबत मैं कुछ भी नहीं जानता । मैं किरायेदारों की इतनी निगरानी तो करता नहीं जो यह मालूम रखूं कि किसके यहाँ कौन आया और कब आया । इनका प्रेस का काम था, इनसे यों ही बहुत से लोग मिलने आया करते थे ।"

जिस ढङ्ग से महंत जी ने उत्तर दिया, उससे यह ज्ञात भी होता था कि वास्तव में हम लोगों के कार्यों के विषय में महत जी को कुछ भी जानकारी नहीं है ।

बात को टालते हुए इन्सपेक्टर ने कुछ हस्तलिखित पत्र जो काग़ज़ों के ढेर में से इकट्ठा किये गये थे महंत जी को देकर, पढ़ने के लिये कहा ।

महत जी ने पत्र आने के स्थान को पढ़ा, जिस व्यक्ति को सम्बोधित किया गया था उसका नाम पढ़ा, थोड़ा सा बीच का विषय पढ़ कर भेजनेवाले के नाम को पढ़ कर कहा, "यह पत्र किसी महिला का है, उन्होंने कोई लेख इनकी पत्रिका में भेजा था, उसी के विषय में पूछा है कि वह लेख कब छपेगा ।"

इन्सपेक्टर ने दूसरे पत्र को आगे बढ़ाया । अब की बार जल्दी से महंत जी ने स्थान, सम्बोधित व्यक्ति और भेजने वाले का नाम बताकर, पत्र के आशय को संक्षिप्त में बता दिया । इसी प्रकार महंत जी पत्रों को जल्दी जल्दी पढ़ कर उनका संक्षिप्त परिचय सी० आई० डी० वालों को दे रहे थे । बीच में ही एक सी० आई० डी० वाला बोला, "मालूम पड़ता है, महंत जी को इन ख़तों-वतों की बाबत पहिले से ही पूरा हाल मालूम था ।"

महत जी ने आँख उठा कर सी० आई० डी० वाले की तरफ़ देखा और बोले, "जी नहीं, पहिले से मुझे कुछ मालूम नहीं था । इन पत्रों को देख कर कोई भी बता सकता है कि ये पत्रिका के सम्पादक को लेखकों ने लिखे हैं ।"

किन्तु सी० आई० डी० वाले के शब्द महंत जी के मस्तिष्क के मर्म केन्द्र पर आघात कर चुके थे । पसीने की हलकी सी बूदें झलक आई और महंत जी चिंतित हो कर अंगुली से माथा खुजलाने लगे, और उनके पढ़ने की गति धीमी हो गई । हाथ के लिखे हुए पत्रों को वे अब प्रारम्भ से अन्त तक बिना आवाज़ के उतार चढ़ाव के पढ़ने लगे । ज़रा भी जहाँ सन्देह होता, उन पंक्तियों को दुबारा पढ़ते । अब वे छपे हुए नोटिसों को भी धीरे धीरे और अटक अटक कर पढ़ रहे थे, मानों भाषा और लिपि का ज्ञान उनका प्रायः लुप्त हो गया हो या वे अब इस बात का प्रमाण दे रहे हों कि वास्तव में इन पत्रों से और इन पत्रों से सम्बन्ध रखने वालों से कभी भी उनका कोई सम्पर्क नहीं रहा है । और वे इस बारे में पूर्ण अनभिज्ञ हैं । वास्तव में था भी ऐसा ही ।

उनमें से कुछ पत्र ओ३म प्रकाश के थे । उन पत्रों के ढेर में से उसका एक फ़ोटो भी निकला । जो पत्र ओ३म प्रकाश का था उसमें किसी के पकड़े जाने का वर्णन था । इसके साथ-साथ कुछ बातें इस रूप से लिखी गई थीं कि उनका दोहरा अर्थ होता था । कुछ बातें अस्पष्ट थीं ।

दारोगा ने यज्ञदत्त से पूछा, "हाँ, यह लड़का ओ३म प्रकाश कौन है ?"

यज्ञदत्त ने कहा, "यह राय साहब के "वैनगार्ड" में काम करता है, शायद उप-सम्पादक है ?"

दारोगा ने पूछा, "वह यहीं रहता है ?"

"जी हाँ," संक्षिप्त में यज्ञदत्त ने उत्तर दिया ।

"तो, आज वह कहाँ चला गया ?" ज़रा उत्सुकतापूर्वक दारोगा ने पूछा।

"उसका कुछ ठीक नहीं, कभी यहाँ सोता है, कभी प्रेस में ही सो जाता है और कभी अपने दोस्तों के साथ कहीं और रह जाता है।" यज्ञदत्त ने धीमे से उद्वेग रहित स्वर में उत्तर दिया।

पास में बैठे हुए एक सी० आई० डी० वाले ने व्यंगपूर्वक कहा, "चलो, एक और बढ़ा।"

दारोगा ने फिर पूछा, "इस वक्त वह कहाँ मिल सकता है ?"

यज्ञदत्त ने घड़ी देखते हुए कहा, "अभी तो उसका कहीं ठीक पता लगना मुश्किल है। लेकिन आधे घण्टे बाद, लगभग १० बजे, वह 'वैनगार्ड' के दफ्तर में ही मिल सकता है।"

इन्सपेक्टर ने एक सी० आई० डी० वाले का नाम लेकर पुकारा और उसको फोटो देते हुए कहा, "देखो तुम 'वैनगार्ड' अखबार के दफ्तर चले जाओ और वहाँ इस शक्ल के एक बाबू होंगे। अपने साथ दो चार आदमी और ले जाना। उनको यहाँ बुला लाना या कोतवाली ले जाना। अगर वे आसानी से चलने से इनकार करें तो गिरफ्तार करके ले जाना। बिना उनको लाये हुए अपनी शकल मत दिखाना, जाओ।"

सी० आई० डी० वाला जूतों की एड़ियाँ बजाकर और एक हाथ से सलाम बजाकर चला गया।

सारे पत्रों और किताबों को देख लेने पर और फिर मुझसे, यज्ञदत्त और मामा जी से पूछताछ कर लेने पर भी इन्सपेक्टर यह ठीक तरह से निश्चय नहीं कर पाया कि वह जिसको पकड़ने आया है, वह 'मैं' हूँ या 'ओश्मप्रकाश' के नाम का व्यक्ति है, जो यहाँ से पहिले से ही लापता है। इस परेशानी में करीब पाँच घण्टे लग चुके थे। आखिर में कुछ ऊबकर इन्सपेक्टर ने कहा, "तो चलिये, आप लोग कोतवाली चलिये; अब ज़्यादा बात चीत वहीं चलकर होगी।"

हम लोगों ने कपड़े पहिनने शुरू कर दिये। सी० आई० डी० के दूसरे लोग भी उठकर कमरे से बाहर निकलने लगे। कमरे के बाहर छोटा सा सहन था और सहन में बाईं ओर एक कोठरी थी। इस कोठरी में कपड़ों के बक्स वगैरह रखे हुए थे। एक सी० आई० डी० वाले ने झांक कर देखा, उसे कुछ बक्स रखे हुए दिखाई पड़े। वास्तव में सुबह के अंधियारे में यह कोठरी किसी को दिखाई ही नहीं पड़ी थी। इन्सपेक्टर के पास आकर सी० आई० डी० वाले ने कहा, "हुज़ूर, अभी एक कोठरी देखने को बाक़ी है, उसमें भी कुछ बक्स वगैरह रखे हुए हैं।"

"कौन सी कोठरी ?" दारोगा ने गर्दन उठाते हुए पूछा।

"हुज़ूर देखिये, इस तरफ़ है।" अंगुली उठाते हुए सी० आई० डी० वाले ने कहा।

"अच्छा तो बक्सों को यहाँ ले आओ।" इन्सपेक्टर ने सी० आई० डी० वालों को हुक्म दिया।

उस कोठरी में दो तीन बक्स थे। सी० आई० डी० वाले बक्स उठा उठा कर कमरे में ले आये। पहिले वाले ने अपना बक्स इन्सपेक्टर के सामने रख दिया, बाकी दो बक्स दूसरों ने दरवाजे के सामने रख दिये। बक्स में ताला नहीं था। इन्सपेक्टर ने बक्स खोला। उसमें कुछ कपड़े और कुछ पत्र थे। कपड़े निकाल कर उसने फ़र्श पर डाल दिये और पत्रों को निकाल कर अपने पास रख लिया। इसी प्रकार उसने दूसरे बक्सों को भी देखा। इन बक्सों में सिर्फ कपड़े ही कपड़े थे, पत्र एक भी नहीं था।

नायब ने अब अपना चश्मा पहिन कर उन पत्रों को पढ़ना शुरू किया। उन पत्रों में से कुछ वास्तव में ऐसे पत्र थे जो जला देने चाहिए थे, किन्तु यज्ञदत्त ने उनको रख छोड़ा था। मुझे इसका तनिक भी ज्ञान नहीं था। पत्रों के साथ अंग्रेज़ी में लिखे हुए मेरे कुछ लेख थे, जिनको मैंने एक साप्ताहिक के रूप में छपवाने के लिये तैयार

किया था। इस साप्ताहिक का नाम हमने 'फ्री इण्डिया' रखा था। इसमें कुछ लेखों द्वारा तो चर्चिल के दोषारोपणों का जवाब दिया गया था तथा सरकार द्वारा की गई ज़्यादतियों का वर्णन किया गया था। लेख उग्र थे; सरकार के ख़िलाफ़ थे। यज्ञदत्त और मैं दो ही उन लेखों के विषय में जानते थे। जब इन्सपेक्टर ने उन लेखों और पत्रों को निकाल कर रखा, तब वास्तव में हम लोगों को भय सा लगने लगा कि इतनी देर तक जो झूठ सच बनाते रहे हैं वह अब ज़्यादा दूर तक नहीं चल सकता। अब तो इन लोगों को प्रमाण मिल गया। अब झूठ से छुटकारा मिलना असम्भव है।" यज्ञदत्त के चेहरे पर भी परेशानी दिखाई पड़ती थी।

पत्रों को और लेखों को देखकर इन्सपेक्टर ने कहा, 'हाँ! अबकी बार माल हाथ लगा है। अब इन लोगों का झूठ नहीं टिक सकता। कहते थे जैसे बिलकुल मालूम हो, और यह कहाँ से निकल आया?"

हाथ के लिखे पत्रों को एक तरफ़ रख कर वह छोटे छोटे पैम्फलेटों और पुस्तकों को देखने लगा। उनमें एक 'हरिजन' था जिसमें गांधी जी का ८ अगस्त का भाषण था। यह आख़िरी कापी मेरे पास बची थी, बाकी करीब सौ कापियाँ बाँट दी गई थीं। पं० जवाहर लाल नेहरू के लेखों और भाषणों का एक संग्रह था, 'नेहरू फिंगस् ए चैलेन्ज।' इसको देखने के बाद उसने पत्रों को पढ़ना शुरू किया।

उसने पूछा, 'ये पत्र तुम्हारे हैं?'

ज़रा पत्रों को देखकर मैंने कहा, 'नहीं, मेरे नहीं हैं।'

तब उसने यज्ञदत्त से पूछा, "तो तुम्हारे हैं?"

उसने भी गर्दन हिलाकर नकारात्मक उत्तर दिया।

इसके बाद उसने उन हस्तलिखित पर्चों के बारे में पूछा। मैंने और यज्ञदत्त दोनों ने ही उनको अपना मानने से इनकार कर दिया।

इन्सपेक्टर ने फिर यज्ञदत्त से पूछा, 'यह बक्स किसका है?'

'बक्स तो यह मेरा ही है।' यज्ञदत्त ने उत्तर दिया।

"अगर यह बक्स तुम्हारा है तो ये पत्र और हाथ के लिखे हुए मज़मून इसमें बाहर से कैसे आ गये?"

"हाँ! यही मैं भी नहीं समझ पा रहा हूँ कि ये पर्चे और ख़त कहाँ से आ गये।" यज्ञदत्त ने उत्तर दिया।

"सब समझ में आ जायगा धीरे धीरे।" कुछ व्यंगपूर्ण स्वर में दारोगा ने कहा। इसके बाद इन्सपेक्टर ने धीरे से नायब के कान में कुछ कहा। नायब उठ कर वहाँ से चल दिया।

आध घण्टे के बाद नायब दारोगा अपने बड़े अफ़सर को लेकर लौट आया। इन्सपेक्टर ने झुक कर सलाम किया। उनका अफ़सर चारपाई पर बैठ गया। दोनों इन्सपेक्टर पास में खड़े रहे।

अफ़सर ने मुझसे पूछा, 'तुम्हारा क्या नाम है?'

'सुरेश चन्द्र।' मैंने कहा और ख़ामोश हो गया।

उसने फिर यज्ञदत्त की तरफ़ मुँह करके पूछा, "और तुम्हारा?"

'मेरा नाम यज्ञदत्त शर्मा।'

"हूँ! तो तुम यज्ञदत्त शर्मा से मिलने यहाँ आये थे?" मेरी ओर देखते हुए उसने कहा।

"जी हाँ!" मैंने उत्तर दिया।

अफ़सर की बातें बड़ी रूखी थीं। उसके हावभाव से कठोरता टपकती थी। वह बहुत कम बातें करता था, और सब बातें एक ही ढंग की थीं। उसने मेरे यहाँ आने का कारण पूछा मैंने उसको भी वही उत्तर दिया जो इन्स्पेक्टर को दिया था। इसके बाद उसने दो चार सवाल यज्ञदत्त से पूछे और फिर मामा जी के बारे में थोड़ा सा पूछकर उठने लगा। इन्स्पेक्टर ने, कागज और पत्र जो बक्स में से निकले थे, आगे बढ़ाते हुए कहा, 'देखिये; हुज़ूर ये ख़त भी यहीं से बरामद हुए हैं।"

अफ़सर ने उपेक्षित भाव से एक निगाह उन पत्रों पर डाली और कमरे से बाहर चल पड़ा। बड़ा इन्स्पेक्टर उसके साथ-साथ चलने

लगा। जीने तक पहुँचने के बाद उसने यज्ञदत्त को बुलाया। यज्ञदत्त भी उसके साथ नीचे चला गया। शायद वे यज्ञदत्त से अलग में पूछताछ करना चाहते थे।

२० मिनट बाद यज्ञदत्त और दारोगा वापस चले आये। नीचे मोटर के चलने की आवाज से मैंने अनुमान किया कि अफसर पूछताछ करके चला गया। इसके बाद फिर दोनों दारोगा बैठकर कागजों को दुबारा पढ़ने लगे। अब जी ऊबने लगा था। सी० आई० डी० वाले भी जम्हाई ले रहे थे। इन्स्पेक्टर तो सिरहाने तकिया लगाकर लेट गया और ऊंघने लगा थोड़ी थोड़ी देर बाद वह आँख खोल कर देख लेता था। शायद उनका अफसर उनको अभी और बैठने का आदेश दे गया था। इस समय दिन के लगभग १ बज गये थे। नीचे से महन्तजी का आदमी आया। महन्तजी ने पुछवाया था कि आप लोगों के लिये मैं खाना भिजवा दूँ। हम लोगों के मना करते रहने पर भी दारोगा ने उससे कहा, "हाँ; जाओ, कह दो कि खाना भिजवा दें।"

महन्तजी का नौकर खाना रख कर चला गया। इन्स्पेक्टर ने और हम लोगों ने खाना शुरू कर दिया। खाना खाकर जैसे ही खत्म किया कि सी० आई० डी० वाला लौट आया। उसने इन्स्पेक्टर से कहा, "हजूर, बेनगार्ड प्रेस में तो उनका अभी तक कोई पता नहीं है। वहाँ, तो वे १० बजे ही पहुँच जाया करते थे लेकिन, आज तो पहुँचे ही नहीं और वहाँ किसी से कुछ कह भी नहीं गये हैं।"

'हूँ' कह कर दारोगा ने अपना सिगरेट-केस निकाला और एक सिगरेट निकाल कर सिगरेट-केस उसने मेरी तरफ बढ़ा दिया।

"थैंक्यू।" कह कर मैंने एक सिगरेट निकाल ली। वास्तव में सुबह से सब लोग मेरा सिगरेट पी रहे थे और अब एक भी सिगरेट बाकी नहीं रह गई थी।

"चौधरी साहब, जरा देखिये क्या बजा है?" नायब से इन्स्पेक्टर ने पूछा।

"दो बज कर चालिस मिनट होगये।" घड़ी देख कर नायब ने उत्तर दिया।

"तो अभी एक घण्टा और साहब का इन्तजार करना होगा। उन्होंने ३॥ बजे आने के लिये कहा है।" इसके बाद फिर इन्स्पेक्टर लेट गया। नायब किताबों और खतों के सफे उलट रहा था। मैं भी दीवार के सहारे कमर लगा कर आराम से बैठ गया। कमरे में उदासी सी छाई हुई थी। सारे कागज और कपड़े इधर उधर बिखरे पड़े थे और हम लोग कबाड़ियों की तरह उस ढेर के बीच में बैठे हुए थे।

करीब चार बजे उनका साहब जो सी० आई० डी० का डी० एस० पी० था, आ पहुँचा। इन्स्पेक्टर हड़बड़ा कर उठ बैठा और सलाम बजाकर पेटी ठीक करने लगा। इन्स्पेक्टर और उसका अफसर दोनों नीचे चले गये। करीब आधा घण्टे बाद उन्होंने यज्ञदत्त को भी बुलवा लिया। यह जानने के लिये व्यग्रता बढ़ती जा रही थी, कि इन सबका क्या मतलब है? सुबह से सब लोग परेशान हो रहे हैं; मामाजी और यज्ञदत्त भी फँसे हुए बैठे हैं। पूरे मुहल्ले में खबर फैल गई होगी; लोग भी क्या सोच रहे होंगे? ऐसे ही बहुतसे विचार मस्तिष्क में घूम रहे थे।

अब की बार यज्ञदत्त को भी उन्होंने काफी देर तक रोक रखा। करीब ४५ मिनट बाद इन्स्पेक्टर और यज्ञदत्त दो तीन सी० आई० डी० वालों के साथ वापस आ गये। जो सी० आई० डी० वाला ओ३म्प्रकाश को खोजने गया था, वह अपनी जगह एक आदमी को बैठा कर लौट आया था। ओ३म्प्रकाश का उस समय तक कोई पता नहीं था।

इन्स्पेक्टर ने आते ही कहा, "चलिये; चौधरी साहब, चलिये।"

कुछ किताबें और पत्र उन लोगों ने छाँट कर अलग कर लिये थे। पत्रों को नायब दारोगा ने, एक फाइल में, बाँध लिया और किताबों को एक सी० आई० डी० वाले को देकर कहा, "इन किताबों को भी कोतवाली ले चलो।"

मैंने भी उठकर जरा मुँह धोया और अपना सूट पहिन लिया। चलने को तैयार होकर मैंने इन्सपेक्टर से पूछा, "कहिये, ज्यादा दिन रखना हो तो बदलने के लिए मैं कुछ कपड़े भी साथ ले चलूँ।

"नहीं जी, कपड़े रखकर क्या करोगे? अभी तो वापस आजाना है।"

मामा जी को उन लोगों ने छोड़ दिया। हम दोनों जब नीचे आये तो देखा की गली में १५–२० लाल पगड़ी वाले सिपाही राइफ़िल लिये हुए बैठे हैं। वहां भीड़-भाड़ नहीं थी। डरके मारे कोई करीब नहीं आता था। दूर से कुछ लोग हम लोगों की तरफ़ उत्सुकता पूर्वक देख लिया करते थे।

मुझे और यज्ञदत्त को उन लोगों ने बीच में ले लिया। आगे इन्सपेक्टर और उसका नायब था, दोनों तरफ़ और पीछे राइफ़िल वाले सिपाही। दिन भर कमरे में बैठे रहने के बाद इस वक्त चलना अच्छा लगता यदि यह परिस्थिति न होती। सड़क पर चलने वाले लोग हट जाते या ज़रा रुक कर विस्मय पूर्वक इस तमाशे को देखते और फिर चल देते। मुझे बड़ी बेचैनी का अनुभव हो रहा था। यह क्या तमाशा हो रहा है? मस्तिष्क ने सोचना बंद कर दिया और पैर बहुत भारी हो गये।

पास में ही काज़ी हौज़ का थाना था। वहां पहुँच कर इन्सपेक्टर रुक गया। दरवाज़े पर उसके अफ़सर की कार खड़ी थी। इन्सपेक्टर ने कहा, "चौधरी साहब, यहाँ तो चलना ठीक नहीं है। चलिये, कोतवाली चला जाय।"

कोतवाली वहाँ से दूर थी। इसलिये दो ताँगे जो पास ही में

थे, पकड़ लिये गये। तांगे वाले से इन्सपैक्टर ने कहा, 'ज़रा तेज़ चलाओ।" और तेज दौड़ने वाला देहली का तांगा कोतवाली की तरफ़ तीव्रगति से चलने लगा।

कोतवाली पर पहुँचकर एक जीने से हम लोग ऊपर के बरामदे में पहुँचे। वहाँ एक बेंच पड़ी हुई थी। उसी बेंच पर हम लोगों को बैठने के लिये दारोगा ने कहा और वह वहां से चला गया।

लगभग १५ मिनट तक हम दोनों उसी बेंच पर बैठे रहे। अब संध्या का अंधकार धीरे धीरे बढ़ता जा रहा था। सामने फुब्बारे पर बड़ा शोर गुल हो रहा था। पैदल, ताँगों और मोटर में लोग इधर उधर आ जा रहे थे। थोड़ी थोड़ी देर बाद ट्राम के आने की गड़गड़ाहट होती और मुसाफिरों से लदी ट्राम गड़गड़ाती चली जाती। धीरे धीरे उसकी आवाज भी कम होती हुई विलीन हो जाती। वहां अकेले बैठे बैठे मन बड़ा ऊब सा रहा था। जी में आ रहा था कि या तो यहां से भाग जाऊँ या नीचे कूद पड़ूँ; किन्तु, चारों तरफ़ तो सी० आई० डी० वाले मौजूद थे।

लगभग १५ मिनट बाद इन्सपेक्टर लौट कर आया। उसके चेहरे पर कुछ खुशी थी। उसने चलने का आदेश दिया। अबकी बार दूसरी सीढ़ियों से हम लोग नीचे उतरे। नीचे थोड़ी दूर तक चलने के बाद एक कमरा आया। इस कमरे में बिजली की बत्ती जल रही थी और एक ऊँचे तख्त पर कुर्सी डाले खाकी वर्द पहिने हुए एक आदमी कुछ लिख रहा था। हमारे पहुँचते ही उस व्यक्ति ने सिर ऊपर उठाया और वह हमारी ओर बड़े अजीब ढंग से घूर कर देखने लगा। इन्सपेक्टर ने उसके सामने रखे हुए एक फाइलबक्स से एक बादामी रंग का काग़ज निकाला और कुछ उर्दू में लिखने लगा। १२६ शब्द उसने अँग्रेजी में लिखा। लिखते लिखते बीच में ही रुक कर उसने मुझसे कहा, "मि० जगदीश, कहिये अब भी आपका नाम सुरेश लिखूँ या मि० जगदीश लिखूँ?"

जितनी देर तक मैं बेंच पर बैठा रहा उतनीदेर मुझे यह लग रहा था कि मेरे कारण यज्ञदत्त बेकार में फंस रहा है। अगर मैं अपना नाम पहिले ही ठीक बता देता तो यज्ञदत्त को शायद कोतवाली की शकल ही न देखनी पड़ती। अब इन्सपेक्टर ने वारन्ट लिख ही लिया था और उन दिनों कम से कम दो महीने तक तो किसी को भी हवालात में बंद करके रखा जा सकता था। फिर मेरे पकड़े जाने के साथ साथ तो उनको कागज़ भी मिले हैं, जिनके आधार पर वे जेल भी भेज सकते हैं। यज्ञदत्त का भी ख्याल था कि कहीं मेरा नाम जानने के लिये उसे अधिक न परेशान करें। यह सब सोच कर मैंने कहा, "हाँ! लिख दीजिये, जगदीश प्रसाद राजवंशी, रिसर्च स्कालर, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी"

"ओ! थैंक यू!, कह कर इन्सपेक्टर मेरा नाम लिखने लगा। नाम लिखकर उसने वह पर्चा कुर्सी पर बैठे हुए व्यक्ति को दे दिया। उसने पर्चा लेकर कहा, 'इनकी तलाशी भी ता लो।"

दारोगा ने मुझसे पूछा, "आपके पास कुछ है?" मैंने कहा, "हाँ! मेरे पास ३० रु० हैं।" और १०) रु० के तीन नोट निकाल कर मैंने दारोगा को दे दिये।

"ये तीस रुपये के नोट आपके नाम में जमा हो जायंगे।" यह कहते हुए वह उन नोटों को कुर्सी पर बैठे हुए व्यक्ति की तरफ़ बढ़ाने लगा।

बीच ही में बात काट कर मैंने पूछा, "क्या ख़र्च करने के लिये इनमें से कुछ रुपये मुझे मिल सकेंगे?"

'नहीं;ये रुपये आपको तब मिलेंगे जब आप छूटेंगे; इससे पहले नहीं।"

मैंने पूछा, "क्या, इन रुपयों को मैं अपने मित्र को दे सकता हूँ?"

"हाँ! अगर चाहो तो दे सकते हो।" दारोगा ने कहा और

मैंने वे रुपये यज्ञदत्त को देने को कह दिये और उसने रुपये इन्सपेक्टर से लेकर अपनी जेब में रख लिये।

इन्सपेक्टर मुझको लेकर चलने लगा और यज्ञदत्त से उसने वहीं रुकने के लिये कहा। रास्ते में मैंने उससे कहा, 'आज मुझको पकड़ने में आपको काफ़ी परेशानी उठानी पड़ी?"

"नहीं, अच्छा रहा। नहीं तो दिन भर और कहीं मारे मारे फिरना पड़ता।"

थोड़ी दूर चलने के बाद एक बरामदा आगया। इसी बरामदे में हवालात की कोठरियाँ थीं। बरामदे में दाख़िल होते ही दारोगा ने चिल्लाकर ज़मादार को बुलाया। चाभी का गुच्छा लिये हुए, बूढ़ा सा एक व्यक्ति जिसकी दाढ़ी मेंहदी से रची हुई थी आता दिखाई पड़ा। वह धीरे धीरे स्वाभाविक गति से चल रहा था। उसके लिये यह कोई नवीन बात नहीं थी।

इन्सपेक्टर की आवाज़ सुनते ही पहली कोठरी में जो व्यक्ति बंद था जंगले पर यह देखने के लिये आया कि, अबकी कौन आया। उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी और दाढ़ी से खाली मुख का रंग बिलकुल पीला था। एक खद्दर का अँगोछा वह पहिने हुए था। उसने मुझे देखने का प्रयत्न किया और मैंने भी उसको ध्यान से देखा। क्षण मात्र में ही मैं उसे पहिचान गया। और उसने भी मुझे पहिचान लिया मेरे मुंह से शब्द निकलने ही वाला था कि उसने होठों पर उंगली रखकर इशारे से बोलने के लिये मना किया। मैं भी समझ गया कि यह क्या बेवकूफ़ी मैं करने वाला था। मैंने अपना मुँह उधर से फेर लिया।

इतनी देर में जमादार ने उससे अगली कोठरी का ताला खोल कर, ज़ोर की आवाज करते हुए लोहे का भारी जंगला खोल दिया और दारोगा ने मुझसे चलने के लिये कहा। दरवाज़े में भीतर घुसते ही ज़मादार ने फिर एक ज़ोर के झटके से आवाज़ करते

हुए दरवाजा बंद कर दिया और मोटी लोहे की चटखनी चढ़ाकर ताला लगाकर दो तीन बार ताला हिलाकर देखा और फिर, दारोगा और जमादार वहाँ से चले गये।

अध्याय ३

कुछ क्षण के लिये मैं दरवाज़े के सामने बिलकुल किंकर्तव्य विमूढ़ सा खड़ा रहा। इन्सपेक्टर और जमादार के चले जाने के बाद बाहर पहरा देनेवाला संतरी आकर ताले को हिलाकर देखने लगा कि वह ठीक बंद है या नहीं। मुझे कुछ चेतना सी आई। मैंने कोठरी की तरफ़ मुँह किया। देखा कि उसमें, दो व्यक्ति बैठे हुए उत्सुकता पूर्वक मेरी तरफ़ देख रहे हैं। जैसे ही मैं उनकी तरफ़ चला वे उठकर खड़े हो गये। उन्होंने बड़े मीठे स्वर में मुझसे कहा 'आइये !'

उस कोठरी में ठीक बीचो बीच छत में एक बल्ब लगा हुआ था। उस बल्ब के चारों तरफ़ लोहे और शीशे का एक ढक्कन पेचों से कसा हुआ था। इसी बल्ब का धीमा और पीला प्रकाश कोठरी में फैला हुआ था। इस प्रकाश में चेहरे बिलकुल साफ़ दिखाई नहीं पड़ते थे, फिर भी उसमें मैंने देखा कि उसमें से एक मौलाना हैं जो लगभग २७ वर्ष के होंगे। उनकी काली बढ़ी हुई दाढ़ी अच्छी तरह से भर नहीं पाई थी। दूसरा व्यक्ति भी लगभग २६-३० वर्ष का होगा। वह खद्दर की कमीज़ और पाज़ामा पहिने हुए था; मूछें उसकी बिलकुल साफ़ थीं।

पास में ही एक बिस्तरा लगा हुआ था और एक तरफ़ एक मूँज का फट्टा पड़ा हुआ था। बिस्तरे पर बैठते हुए मौलाना ने मुझसे भी बिस्तरे पर बैठने के लिये कहा। बिस्तरे पर बैठने के

बाद मौलाना ने बातचीत शुरू की। उसने पूछा, 'आप कांग्रेस के काम में गिरफ्तार किये गये हैं ?"

मैंने कहा " जी, हाँ; और आप ?"

मौलाना ने ज़रा रुक कर उत्तर दिया, 'मैं तो साहब प्रेस एक्ट में पकड़ा गया हूँ। मेरे ऊपर प्रेस एक्ट और डी० आई० आर० की दफ़ा ३६, दोनों लगाई गई हैं। मेरे यहाँ एक प्रेस खाना तलाशी में पकड़ा गया था।"

मैंने पूछा, "आपका इस्म शरीफ़।"

उसने सीधे सादे ढंग में अपना नाम बता दिया। इसके बाद मौलाना ने उसके साथ जो दूसरा व्यक्ति था, उसका नाम और परिचय मुझको दिया। वह दूसरा व्यक्ति किसी प्रेस में कम्पोज़ीटर था। वहाँ उन दिनों स्ट्राइक चल रहा था, उसी स्ट्राइक में भाग लेने के कारण वे महाशय पकड़ लिये गये थे। मौलाना ने इनके साथ यह भी बताया कि कम्पोज़ीटर के और दूसरे साथी भी कल और परसों पकड़ कर लाये गये थे। कुछ तो माफी मांग कर छूट गये और कुछ की ज़मानत हो गई।

इसी बीच में कोई फिर जंगले पर खड़ा हुआ दिखाई पड़ा। मौलाना जंगले की तरफ़ गया। रोटी लाने वाला खाना लिये खड़ा था। जंगले में से टेढ़ा करके मौलाना ने अपनी रोटी और गोश्त लिया। इसके बाद उनका दूसरा साथी भी उठकर जंगले पर रोटी लेने चला गया। मौलाना ने रोटी लाने वाले से कहा, "देखो, एक खाना और लाओ। हिन्दू के यहाँ से लाना। एक साहब और आये हैं।"

रोटी लाने वाले ने जंगले से अंदर झांक कर देखा और जब उसे यह तसल्ली हो गई कि वास्तव में एक और व्यक्ति आ गया है तब वह वहाँ से गया। मैंने मौलाना से कहा, 'यार; मना कर दो, मुझे तो बिलकुल भूख नहीं है।"

मौलाना ने बीच में ही बात काटते हुए कहा, 'अरे साहब, अभी आपको यहाँ बहुत दिनों रहना पड़ेगा। अभी से भूखा रहना शुरू करेंगे तो कैसे काम चलेगा। इसके अलावा खाने के पैसे तो ये लोग ले ही लेंगे, इसलिये इनसे तो खाना ले ही लेना चाहिये; चाहे फिर कुत्ते को ही क्यों न खिला दें।"

वे दोनों खाना नहीं खा रहे थे। वे मेरी रोटी के आनेका इन्तज़ार कर रहे थे। मैंने कहा, "मौलाना साहब, आप खाइये ! जब मेरी रोटी आजायेगी तो मैं भी खाने लगूंगा; आप खाना क्यों ठंडा कर रहे हैं।"

मौलाना पर मेरी बात का कोई असर नहीं हुआ। दूसरा कम्यूनिस्ट साथी जो प्रेस की स्ट्राइक में आया था बोला, "साहब, जल्दी क्या है.........भला, ऐसा मौका भी कहीं मिलता है कि हवालात में साथ साथ बैठ कर खाना खा सकें।'

इतनी देर में मेरी भी रोटियाँ आगई। जंगले पर जाकर मैं भी अपनी रोटी तरकारी ले आया और हम तीनों ने खाना शुरू किया। छः मोटी रोटियाँ थीं और एक तरकारी, जिसमें मिर्चा खूब पड़ा हुआ था। तरकारी के टुकड़े दो चार ही थे बाकी सब पानी ही पानी था। खाने के बीच में मौलाना ने पूछा, "कहिये, कैसी लग रही है ?"

मैंने उत्तर दिया, "बहुत अच्छी"।

इसके बाद मौलाना और उस कम्यूनिस्ट भाई में बातों का सिलसिला जो मेरे आने की वजह से बन्द हो गया था, फिर से जारी हो गया। वह अपनी माँगें बता रहा था और अपने यहाँ के संगठन के बारे में बात चीत कर रहा था। मौलाना बीच बीच में एक आध सवाल कर देता जिसका उत्तर वह ठीक नहीं दे पाता था।

थोड़ी देर बाद वह कम्यूनिस्ट पार्टी और कांग्रेस की बात चीत करने लगा। उसके बाद वह अपने यहाँ के एक कम्युनिस्ट लीडर की तारीफ करते हुए कहने लगा, "जनाब, आपकी कांग्रेस में उसके

मुकाबले का एक भी आदमी नहीं मिल सकता। बस, ऐसा समझिये कि जिस तरह आपके यहाँ महात्मा गान्धी हैं उसी तरह वह हमारी पार्टी का नेता है। उसकी बात को कोई टाल नहीं सकता। बस, अकेले गान्धी ही उसकी बराबरी कर सकते हैं।"

मौलाना से अधिक न सहा गया, वह व्यंग करता हुआ बोला, 'ऍं, वह तुम्हारा लीडर हमारे गान्धी के बराबर है ? हमारा गान्धी जिस दिन पकड़ा गया उस दिन सारे हिन्दुस्तान में आग लग गई थी। हजारों इमारतें जलाकर खाक कर दी गई थीं और जिस दिन तुम्हारा गान्धी यहाँ पकड़ कर आया, उस दिन हमने तो देखा, कोई उससे मिलने भी नहीं आया, खुद वही माफी माँग कर चला गया।"

वास्तव में मौलाना की चोट बड़ी सख्त थी। विरोधी तिलमिला उठा। जब मौलाना उसके गान्धी के बाबत कह रहा था तो कम्पोज़ीटर के हाथ का टुकड़ा हाथ में ही रह गया था। अपने लीडर के बारे में ऐसी बातें आज पहिले पहिल उसे सुनने को मिल रही थीं।

मुझ से एक रोटी बड़ी मुश्किल से खाई गई। बाकी रोटियाँ और तरकारी मैंने एक कोने में खिसका कर रख दीं और हाथ धोने के लिये पानी देखने लगा। मौलाना ने कहा, 'ज़रा "आप इन्तज़ार कीजिये ! जब वह कटोरी थाली लेने आयेगा तभी आपके हाथ धुला देगा। तभी आप पानी पी लीजियेगा; नहीं तो, रात को सन्तरी को बुलाना पड़ता है और ये लोग बहुत बुरा मानते हैं।"

थोड़ी देर बाद थाली लेजाने वाला नौकर आगया। वह जंगले के बाहर था और मैं जँगले के अन्दर। बाहर से ही वह लोटे से पानी डाल रहा था और मैं जँगले से सटा कर हाथ धोरहा था। पानी पीने में बड़ी दिक्कत पड़ी, सिर बिलकुल जँगले से सटाना पड़ता था, तब कहीं जाकर पानी पीने को मिलता। मेरे बाद मौलाना ने और फिर कम्यूनिस्ट भाई ने हाथ धोये।

इसके बाद हम लोग फिर आकर बैठ गये। मौलाना ने मुझसे पूछा, "आप यहीं रहते हैं या बाहर के रहने वाले हैं ?"

मैंने उनको अपने विषय में थोड़ा सा बताया कि मैं इलाहाबाद का रहने वाला हूँ और अबकी बार ७ दिन हुए तभी आया और इसी बीच में पकड़ा गया। मौलाना ने भी बहुत से लोगों का नाम लिया जो पकड़े गये थे। उनमें से थोड़े से व्यक्तियों से मैं परिचित था। बहुत सी बातें थीं जो वह बतलाना चाहता था; किन्तु उस तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति के कारणवश नहीं बता रहा था। मैं भी उसकी उस मजबूरी को भली भाँति जानता था। मैंने भी अधिक उत्सुकता नहीं दिखाई। अपने बारे में अधिक परिचय देना मैंने ठीक नहीं समझा। कम्युनिस्ट से फिर कुछ बातें मौलाना की चल निकलीं। बातें अन्दोलन के ऊपर थीं। मौलाना कह रहा था, "तुम सब कम्युनिस्ट गद्दार हो। तुमने आड़े वक्त में मुल्क को धोखा दिया है। तुम्हारे साथियों ने काम करने वालों को पकड़ा दिया। पहिले चिल्लाया करते थे कि बगावत करो, बगावत करो; और जब बगावत का मौका आया तो सरकारी नौकरी करने लगे ! अरे, हम सब कम्युनिस्टों को जानते हैं; एक से एक बढ़ कर हरामी हैं।"

वह बिचारा कम पढ़ा कम्यूनिस्ट था। कुछ बातों को बार बार दोहरा कर अपनी पार्टी का बचाव कर रहा था। किन्तु बात चीत करने के ढंग से साफ नजर आ रहा था कि वह हार गया है। सम्भवतः अपनी पार्टी के सारे कार्यों को वह ठीक भी नहीं मानता था। और शायद बहुत सी बातों को तो समझता भी नहीं था।

किसी ने जंगले पर पंजाबी और हिन्दी भाषा में कुछ कहा। मैंने और मौलाना ने उधर देखा। एक पंजाबी सिख वहाँ खड़ा हुआ मुझे बुला रहा था। मैं जंगले के पास गया। वह पंजाबी और हिन्दी मिश्रित भाषा में बोला, जिसका तात्पर्य था कि मेरे पास कुछ ओढ़ने बिछाने को है या नहीं। मैंने उससे बताया कि सिवा इन कपड़ों के जो

मैं पहिने हुए हूँ और कुछ भी नहीं है । वह थोड़ी देर खड़ा सोचता रहा और फिर चलते समय करीब आकर धीरे से बोला, अच्छा, मैं तुम्हारे लिये कुछ इन्तजाम करता हूँ; लेकिन किसी से जिक्र मत करना ।" इतना कह कर वह वहाँ से चला गया । जब मैं लौट कर आया तो मौलाना ने पूछा, "वह क्या कह रहा था ?"

मैंने कहा, "मेरे रात के सोने के लिये ओढ़ने-बिछाने के बारे में पूछ रहा था ।"

मौलना ने कहा, 'अरे, ये साले बड़े झूठे होते हैं । यह इन्तजाम वगैरह कुछ नहीं करेगा । वह इसलिये आया होगा कि तुम्हारे घर का पता मालूम करके वहाँ पहुंच जाय और वहाँ जाकर घरवालों से तुम्हारे बहाने कुछ पैसे ऐंठ ले ।'

थोड़ी देर बाद फिर दो चार व्यक्ति खड़े दिखाई पड़े, उनके साथ लाल दाढ़ी वाला जमादार भी था । जमादार ने मेरा नाम लेते हुए कहा, 'आइये, आपको बाहर जाना है ।'

मैं सीधे-सादे ढंग से उठकर दरवाजे की तरफ चला । वहाँ पहुंच कर मैंने देखा कि जमादार ताला नहीं खोल रहा है । उसने कहा, "चलिये, पहिले जँगले की तरफ चलिये ।"

मैं उसका मंतव्य बिना समझे हुए खिड़की की तरफ चला गया । यहाँ पहुँच कर मैंने देखा कि उसके हाथ में लोहे की भारी भारी हथकड़ियाँ हैं ; उनको मेरी तरफ बढ़ाते हुए उसने कहा, "लाइये; ये हथकड़ियाँ आपके हाथों में लगा दूँ ।"

मैंने हाथ बढ़ाने से इनकार करते हुए कहा, "मैं हथकड़ियाँ नहीं पहिनूँगा ।"

इस पर वह बोला, "साहब, जल्दी हाथ कीजिये; यहाँ तो यही कायदा है । बाहर निकालते वक्त हरएक को हथकड़ी पहनाई जाती है, इसमें कोई खास बात नहीं है ।" इतनी देर में मौलाना भी उठ कर आ गया । वह मेरे पास ही खड़ा हुआ था । उसने धीरे से मुझसे कहा,

"हथकड़ियों को पहन लो इसमें हुज्जत करने से कोई फ़ायदा नहीं । शायद ये तुम्हें सवालात पूछने के लिये ले जाना चाहते हैं । बेकार जबरदस्ती करेंगे; यह ठीक नहीं रहेगा ।"

मैंने न चाहते हुए भी अपना हाथ आगे बढ़ा दिया । जमादार ने अपना हाथ जँगले से बाहर निकाल कर मेरे हाथों में हथकड़ियाँ डाल दीं । दोनों हाथों में हथकड़ियों से बँधी हुई जंजीर उसने जँगले के अन्दर करके मुझसे कहा, "आप अब दरवाजे पर आ जाइये ।" दरवाजा खटके की आवाज़ करते हुए खुला । दरवाजे से बाहर निकलने से पहिले ही हथकड़ियों की चैन को एक सी० आई० डी० वाले ने अपने हाथ में ले लिया । दो सी० आई० डी० वाले आगे और दो दायें-बायें चल रहे थे और एक आदमी मेरी हथकड़ियों की चैन लिये हुए पीछे-पीछे चल रहा था । किनारे की कोठरी में बन्द व्यक्ति अपने जँगले पर आकर खड़ा हो गया था । मैंने अबकी बार उसको एक तिरछी निगाह से देख कर मुँह फेर लिया । वह और मौलाना दोनों चिंतित से हो गये थे । चलते वक्त मौलाना के चिंतित मुख को देख कर मुझे भी कुछ डर सा लगने लगा था कि ये लोग इस तरह मुझे न जाने कहाँ ले जा रहे हैं ।

थोड़ी दूर चलने के बाद वे लोग एक जीने से ऊपर चढ़ने लगे । ऊपर पहुंच कर मुझे मालूम हुआ कि मैं उसी बरामदे में आ गया हूँ, जिस बरामदे में शाम को एक बेंच पर बैठाकर दारोगा कहीं चला गया था । उस बरामदे में करीब बीस कदम चलने के बाद वे लोग एक कमरे के सामने रुक गये । उस कमरे के दरवाजे में ताला पड़ा हुआ था । उनमें से एक सी० आई० डी० वाले के पास उसकी चाभी थी । चाभी लगाकर उसने ताला खोला । और अन्दर जाकर उसने स्विच दबाकर बल्ब जला दिया ।

प्रकाश हो जाने के बाद हम लोग भी कमरे में घुसे । वह कमरा हवालात की कोठरी से भी छोटा था । उस कमरे में फ़र्श पर मेटिंग

बिछी हुई था और एक तरफ एक कुर्सी और एक छोटी सी मेज पड़ी हुई थी। कुर्सी और मेज को सी० आई० डी० वाले ने एक तरफ कोने में कर दिया। कमरे में अब काफी जगह लगने लगी थी। वहां पर उस मैटिंग पर वे लोग बैठ गये और मुझसे भी उन्होंने बैठने के लिये कहा।

कमरे में बैठ जाने के बाद सी० आई० डी० वाले ने कमरे में चारों तरफ आँख घुमा कर देखा। शायद वह यह देख रहा था कि उस कमरे से कोई बाहर निकल भागने का तो रास्ता नहीं है। उस कमरे में एक छोटा सा झरोखा बिलकुल छत से मिला हुआ था। वह झरोखा इतना छोटा था कि उसमें से आदमी नहीं निकल सकता था। इसके बाद उसने वह दरवाजा जिससे हम लोग भीतर आये थे बन्द कर दिया और फिर वह ताला जो भीतर आते वक्त खोला गया था अन्दर से दरवाजे में लगा दिया गया। इस प्रकार बिलकुल सुरक्षित रूप में वे सी० आई० डी० वाले और मैं बन्द हो गया था। यह सब कुछ होता हुआ देख कर मैं समझ नहीं पा रहा था कि आखिरकार इन सब चीजों से इनका क्या तात्पर्य है।

कमरा बन्द करने के बाद वे सब मेरे चारों ओर बैठ गये। वे सब मिलकर पाँच थे, उनमें वह सिख भी शामिल था जो थोड़ी देर पहले हवालात के दरवाजे पर मुझसे ओढने बिछाने के बारे में पूछने आया था; अन्य चार शक्लें बिलकुल नई थीं। मेरे घर पर पकड़ने के लिये जो सी० आई० डी० गये थे उनमें से एक भी इनमें नहीं था। उनमें से एक सी० आई० डी० वाला लम्बे कद का गोरा सा था। उसकी उम्र लगभग २६ साल की होगी। वही सबसे ज़्यादा बातें कर रहा था। उसके अतिरिक्त एक और व्यक्ति था, जिसकी मूछें लम्बी और नीचे को झुकी हुई थीं, आँखों पर वह खासा मोटा चश्मा लगाये हुए था। कम-से-कम पाँच पाइण्ट के तो उसके चश्मे के शीशे होंगे ही। वह काला कोट पहिने हुए था। उसकी उम्र लगभग ३५ साल

की होगी। बाकी लोग चुपचाप बैठे हुए थे। वे कम पढ़े लिखे और नीचे ओहदे के मालूम पड़ते थे।

सबसे पहिले लम्बे कद के सी० आई० डी० वाले ने मुझसे प्रश्न किया, "हाँ तो साहब, अब बतलाइए कि आपके क्या हाल चाल हैं।"

बीच ही में मैंने कहा, "हाल चाल अभी तक तो बिलकुल ठीक हैं और आगे पता नहीं कैसे रहेंगे।"

"खैर, आप आगे की फ़िकर मत कीजिये! डरने की बात कोई नहीं है। आप यह बताइये कि आप दिल्ली कब आये थे?"

मैंने कहा, "दिल्ली आये मुझे तीन दिन हो गये।"

"आप ठहरे कहाँ थे?"

"वहीं, जहाँ से आज पकड़ कर लाया गया हूँ।"

"जी!" कह कर वह ज़रा रुका और फिर उसने कहना शुरू किया। "यह तो आप झूठ बोलते हैं कि आपको दिल्ली आये सिर्फ तीन दिन हुए हैं। दिल्ली में आप बहुत दिनों से हैं और आप कहाँ कहाँ रहे इसका भी हमें पूरा पता है।"

"अगर आपको सब बातें पहिले से ही मालूम हैं तो आप मुझसे बेकार ही पूछ रहे हैं।" मैंने उसके उत्तर में जवाब देते हुए कहा।

"हाँ! मालूम तो हमें हैं; लेकिन हम आपके मुँह से भी तो कहलवाना चाहते हैं।" उसने मुझको जवाब देते हुए कहा, "हाँ, मैं आपको एक बात बता दूं। मैं भी यहाँ यूनीवर्सिटी में ही ज़्यादा रहता हूँ। लड़कों से ही मेरा ज्यादा वास्ता पड़ता है। उनके दाँव पेंचों को मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"

"जी हाँ! आपके बताने से पहिले ही आपकी शक्ल से मुझे इसका कुछ अन्दाज़ा हो गया था।" व्यंग करते हुए मैंने कहा। हालाँ कि, मन भीतर ही भीतर कह रहा था कि उसको जितना चाहे अकड़ने दो, तुम अपनी तरफ से सभ्यता को मत छोड़ो। किन्तु उसकी

शक्ल बेवकूफों जैसी थी और उसका बात करने का ढंग ऐसा भोंडा था कि उसको ऐसा उत्तर दिये बिना मैं न रह सका।

उसने फिर कहा, "देखिये, अगर आप अब नहीं बतायेंगे तो हमारे पास दूसरे तरीके हैं। उनसे हम सब बातें आपसे उगलवा ी लेंगे।"

मुझे भी कुछ गुस्सा आ गया। मैंने भी कहा, "तो आपको मना किसने किया है? जो जी में आये, कीजिये न।"

कटुता बहुत अधिक बढ़ती जा रही थी, यह देख कर सिख बीच में पड़ गया। वह कहने लगा, "यार, तुम भी बड़ी बेतुकी बातें करते हो। बात करने का ढंग तुमको बिलकुल नहीं आता हाँ; बस, आप बता दीजिये न कि आप यहाँ कब आये थे।"

मैंने कहा, "मैंने बताया न कि मुझे यहाँ आये करीब तीन दिन हुए।"

इसी बीच में वह सी० आई० डी० फिर बोल पड़ा, "देख लिया आपने; इस तरह कभी भी नहीं बतायेंगे।"

सिख जरा देर को कुछ चुप हो गया। इसके बाद उसने फिर पूछा, "अच्छा, यहाँ आप पहिले भी कभी आये थे?"

मैंने कहा, "हाँ, आया था। लेकिन कई साल पहिले, दिल्ली घूमने के लिये।"

सिख ने बीच ही में मेरी बात काटते हुए कहा, "मैं कई साल पहिले की बात नहीं पूछता। मैं यह जानना चाहता हूँ कि अभी हाल ही में, एक दो महीने के बीच में आप यहाँ आये थे?"

मैंने उत्तर देते हुए कहा, "नहीं; इस बीच में तो मैं नहीं आया।"

मेरा उत्तर सुनने के बाद सिख भी कुछ खिसिया कर चुप सा हो गया। किन्तु उसने अपना दिमाग़ बिगाड़ा नहीं; बल्कि, उसको चुप देख कर फिर वही सी० आई० डी० वाला कहने लगा, "जी जनाब, आप आये थे, आये थे। यहाँ आप आचार्य जी, अरुणा आसफअली

और दूसरे लोगों से मिले थे और आप कहें तो मैं यह भी बतला दूँ कि आप किन किन से किस किस दिन मिले और कहाँ-कहाँ मिले? आप हमको बिलकुल बेवकूफ ही समझते हैं?"

उसकी बात के उत्तर में मैंने कहा, "जी नहीं, मैं तो आपको बेवकूफ नहीं समझता। यह आपका खुद का ख़्याल है।"

"अगर बेवकूफ नहीं समझते तो और क्या समझते हैं। एक घण्टे से मैं शराफत से पूछ रहा हूँ और आप बिलकुल ऊटपटाँग जवाब दे रहे हैं।"

मैं कुछ कहने ही वाला था कि इसी बीच में वह सिख फिर बोल उठा, "तुम बहुगुना को जानते हो।"

मैंने कहा, "हाँ मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ। वह मेरे साथ इलाहाबाद में था। वह यहाँ चला आया था और मैं वहीं रह गया था। मुझे इलाहाबाद में ख़बर मिली थी कि वह पकड़ लिया गया है।"

सिख फिर बोला, "हाँ, उसे मैंने ही पकड़ा था। वास्तव में राज-नीतिक कैदियों को पकड़ना मुझे बहुत बुरा लगता है। लेकिन, क्या करें यह नौकरी जो है। उससे अगर कभी मिलो तो पूछना कि उसके साथ मैंने कैसा सलूक किया था।"

सिख की बातों से मेरे ऊपर बड़ा अच्छा असर पड़ रहा था। मैं वास्तव में समझ रहा था कि यह सिख इतना ख़राब आदमी नहीं है जितने ये अन्य व्यक्ति जो यहाँ मौजूद हैं। सिख की बातों का असर उस सी० आई० डी० वाले पर बहुत बुरा पड़ रहा था। शायद वह मन ही मन अपने को छोटा और रूखा सा अनुभव कर रहा था और उसको सबके सामने इस प्रकार अनुभव कराने में सिख का व्यवहार ही उत्तरदायी था।

अपनी प्रमुखता दिखाने के लिये इस सी० आई० डी० वाले ने फिर मुझसे प्रश्न किया, "अगर आपकी किसी से कोई खास मुलाकात

नहीं थी तो यह बताइये आप इतनी दूर इलाहाबाद से यहाँ आये क्यों थे ?"

मैंने कहा, "मेरे यहाँ आने के दो कारण थे। एक तो यह कि इलाहाबाद में सी० आई० डी० वाले सब जान गये थे और बहुत परेशान कर रहे थे। जहाँ मैं जाता था वहीं रेड हो जाता था। दिन में निकलना मुश्किल हो गया था। साथियों ने भी कहा और मैंने भी सोचा कि चलूँ कुछ दिनों के लिये यहाँ से बाहर चला जाऊँ और जब सब शांत हो जायगा तब फिर लौट आऊँगा और दूसरा कारण यह था कि मुझे वहाँ पता लगा था कि मेरा साथी बहुगुना यहाँ पकड़ा गया है। मैंने सोचा कि चलो देहली में चल कर किसी तरह से उसका पता लगाया जाय कि वह कहाँ पर है। अगर मैं उसकी कुछ सहायता कर सकूँ तो करूँ। बस, यही वजह थी कि इतनी दूर इलाहाबाद छोड़ कर मैं, जनाब; आपके शहर में आया।"

"हाँ, तो आपने बताया कि एक तो यह कि सी० आई० डी० वाले वहाँ आपको जान गये थे और यहाँ के सी० आई० डी० वाले तो आपको जानते नहीं थे! और दूसरी वजह यह कि अपने दोस्त की खैर खबर के लिये आये थे। इसके अलावा और किस काम के लिये आप आये थे; वह बताइये।'

मैंने कहा, "मैं जिस वजह से आया था वह तो मैंने आपको बता दिया। अगर आप इससे ज़्यादा कुछ जानते हों तो आप ही बता दीजिये।"

वह कहने लगा, "हाँ, हम तो जानते हैं और आपको बतायेंगे ही। लेकिन हम तो आपके मुँह से सच बात कहलवाना चाहते हैं।"

"लेकिन, आप से तो बात करना ही बिलकुल बेकार है। आप तो किसी बात के लिये भी हाँ नहीं करते। अच्छा, आप यहाँ आकर स्टेशन के पास किसी होटल में रुके थे या नहीं? आप लोग मुसलमानों के कपड़े पहिन कर मुसलमानों का नाम रखकर यहाँ रहे थे

या नहीं? आप यहाँ सिनेमा के सामने के मैदान में किसी दिन आचार्य जी से बातें कर रहे थे या नहीं?" इसी प्रकार की और बहुत सी बातें वह कहता रहा।

मैंने तुरन्त उत्तर दिया, "नहीं, आपका ख्याल गलत है। आपने किसी दूसरे को देखा होगा।"

किन्तु उसकी बातें सच थीं। उसकी बातों का मेरे ऊपर असर हो चुका था। वह जीत चुका था और मुझे अपनी हार का अनुभव होने लगा था। वैसे तो मैं उसकी बातों का प्रतिवाद कर रहा था; किन्तु, दिल ही दिल डर रहा था। ज़मीन नीचे से कुछ खिसकती जा रही थी। मैं समझ नहीं पा रहा था कि किस प्रकार एक के बाद एक घटना और हर एक स्थान उसे मालूम होगया। वास्तव में वह निरा मूर्ख नहीं है। कहीं न कहीं से तो उसने मेरे विषय में जानकारी प्राप्त कर ली है। लेकिन, ये चीजें तो चार आदमियों को ही मालूम थीं; और आज वे लोग हवालात में हैं। मुमकिन है कि उनमें से ही किसी ने कहा हो। लेकिन मन कह रहा था, यह जाल है, यह कपट है। बुरी तरह से फँस जाओगे। किसी भाँति प्रयत्न करने पर भी निकल नहीं पाओगे।

इसके बाद वह भी खामोश हो गया। उसकी आँखों में नींद भर आई थी। उसके अन्य साथी भी करीब करीब सो गये थे। उसने दो आदमियों को जो पैर की तरफ़ बैठे थे जगाया। उनको जगाकर कहने लगा, "वाह भाई, तुम भी खूब हो। आप लोगों ने इतनी देर में एक नींद भी पूरी कर ली।"

"उनमें से एक उसके आरोप का उत्तर देते हुए कहने लगा, नहीं साहब, मैं तो अभी तक जग रहा था; अभी ज़रा झपकी लगी थी।"

उसने कहा, अच्छा तो शायद आपको बताने में कुछ शर्म आती है। लीजिये, यह काग़ज और पेंसिल लीजिए और इस पर आप लिख

दीजिये कि आप यहाँ कब कब आये, कहाँ कहाँ रहे और किस किस से मिले।" यह कहकर उसने एक सफ़ेद कागज़ और एक पेंसिल मेरी तरफ़ बढ़ा दी। उसी समय कोतवाली के घंटे की आवाज़ आई। रात्री के दो बज चुके थे।

काग़ज पेंसिल लेकर मैंने लिखना शुरू किया। जो बातें मैंने उसे बताई थीं उन्हीं बातों को ज़रा बढ़ा बढ़ा कर और शब्दों के बीच में काफ़ी स्थान छोड़ छोड़कर मैं लिखने लगा। एक तरफ़ काग़ज परही जो कुछ मुझे लिखना था सब आ गया। लिखने के बाद काग़ज मैंने उसकी तरफ़ बढ़ा दिया। कागज लेकर वह पढ़ने लगा। पढ़कर खत्म करने के बाद वह बोला, "आखिर, आपने भी कसम खाली है कि जितना एक बार कह दिया उससे ज्यादा एक लफ्ज़ भी नहीं बतलायेंगे ?"

"मैंने कहा, बताऊँ क्या ? अगर कुछ बताने को हो तो बताऊँ।"

इसके बाद वह यूनिवर्सिटी के लड़के और लड़कियों के किस्से बताने लगा। कहने लगा, हमने यहाँ बहुत से लड़कों को पकड़ा। जब उनसे सवालात किए तो उन्होंने सब बातें हमको बता दीं। उनमें से ज्यादातर लड़के वे थे जो लड़कियों की खातिर बलवे में शामिल हो गये थे। उन्होंने साफ़ साफ़ सब बातों को हमसे कबूल दिया और हमने भी उनको छोड़ दिया।" वह इसी प्रकार की और बहुत सी बातें लड़के लड़कियों के प्रेम की करता रहा।

इसके बाद उसने बड़ी मूँछवाले को जगाकर कहा, "अच्छा शेख जी, मैं तो अपना सिर इनसे मार चुका। ये तो बिलकुल पत्थर हैं। अब आप कोशिश कीजिये; शायद कुछ हासिल कर सकें।" इतना कहकर वह आँखें बंद करके लेट गया।

बड़ी मूँछवाले साहब आँख खोलने का प्रयत्न करते हुए मुझसे पूछने लगे "हाँ, तो आपने बताया नहीं कि आप यहाँ कब आए और क्यों आये।"

मैंने कहा, "यह सब मैंने बता दिया है और बता ही नहीं दिया है, बल्कि, देखिये इस कागज़ पर लिख भी दिया है।"

मेरी बातों का उस पर कोई असर नहीं हुआ। वह बोला, "अरे साहब, उस पर जो कुछ आपने लिखा होगा सो तो ठीक है। मैं तो आपके मुँह से सुनना चाहता हूँ कि आप यहाँ कब आये, कैसे आये और क्यों आये।"

मैं समझ गया कि इन लोगों का मतलब आज रात भर मुझे जगाने का है। मैं उसकी बात का कोई उत्तर न देकर आँख मीच कर सोने का प्रयत्न करने लगा। उसने हाथ पकड़ कर मुझको जगा दिया, और कहने लगा, "वाह साहब, यह भी खूब है कि मैं आपसे एक बात पूछ रहा हूँ और आप आँखें बंद करके सोने की कोशिश कर रहे हैं !"

मैंने कहा, "तो आप क्या जानना चाहते हैं।"

उसने फिर अपनी बात दुहरा दी।

मैंने भी उसके उत्तर में वही बातें जो पहिले सी० आई० डी० वाले से कहीं थीं, दोहरा दीं। इसके बाद वह बहुत से ऊटपटांग प्रश्न करता रहा और मैं भी उनका वैसा ही उत्तर देता गया। किन्तु, जब मैं सोने का प्रयत्न करता तभी वह कोई नया सवाल पूछता और मेरे शरीर को हिलाकर जगा देता। मुझे बड़ा क्रोध आ रहा था। कई एक बार मैंने क्रोधित होकर उसे उत्तर दिया; किन्तु, वह भी प्रश्न करता गया और उसने मुझे सोने नहीं दिया।

इसी प्रकार की कशमकश में रात्री का अधिक समय व्यतीत हो गया था। मुर्गा बाँग देने लगा था। दो एक सी० आई० डी० वाले और भी जग गए थे। वे बराबर मुझसे प्रश्न कर रहे थे। मस्तिष्क ने सोचना बंद कर दिया था। आँखें जल सी रही थीं; किन्तु, अब नींद बिलकुल नहा आ रही थी। ऊपर के झरोखे से प्रभात का प्रकाश कमरे की छत पर पड़ने लगा था। बिजली के बल्ब का प्रकाश धीरे

धीरे पीला होता जा रहा था। सड़क पर तांगों और मोटरों के चलने की आवाज़ भी आने लगी थी। धीरे धीरे ट्राम गाड़ियों की घड़ घड़ भी प्रारम्भ हो गई और दिन के निकल आने की सूचना फव्वारे की सड़क का कोलाहल देने लगा था।

लगभग ७½ बजे के हम उस कमरे से निकले।

बाहर सूर्य का प्रकाश फैला हुआ था। एकायक बाहर निकलने पर आँख चौंधियाने लगीं। हम लोग उस बरामदे से होते हुए ज़ीने से उतर आये। रात भर उन्होंने मेरे हाथ की हथकड़ियों को खोला नहीं था। अब भी हथकड़ी पड़ी हुई थी। मैं सोच रहा था कि ये लोग लेजाकर मुझे हवालात में बंद कर देंगे किन्तु वे लोग मुझे हवालात की तरफ़ नहीं ले गये। नीचे के बरामदे में थोड़ी दूर चलने के बाद एक कमरे के पास रुक गये। यह कमरा ठीक हवालात की कोठरी के पीछे था। यह काफ़ी बड़ा कमरा था। बीच में एक मेज़ और दो कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं। एक कुर्सी उनमें साबित थी और दूसरी कुर्सी टूटी हुई थी। कुर्सी का हत्था भी टूटा हुआ था और उसकी बेंत में भी बैठने के स्थान पर एक बड़ा छेद हो गया था। साबित कुर्सी पर काले कोट वाला सी० आई० डी० खुद बैठ गया और टूटी हुई कुर्सी पर उसने मुझसे बैठने के लिये कहा। संभवतः उस टूटी हुई कुर्सी पर बैठाकर मुझे वह हीन प्रदर्शित करना चाहता था।

मैं उसकी इस बात का ख्याल न करके उस कुर्सी पर बैठ गया। उसके दूसरे साथी भी कमरे में आ गये थे। उन लोगों ने मुझसे फिर सवालात पूछने शुरू कर दिये। रात भर जागने के कारण मैं कुछ चिढ़ सा गया था। मैंने उनके सवालातों का कोई उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर बाद वह अपने साथी से बोला, "बताओ; यार ! अब क्या किया जाय ? जाओ, ज़रा साहब से फ़ोन करके पूछो कि अब क्या करें ?"

लम्बे क़द वाला सी० आई० डी० वहाँ से उठकर चला गया।

उसके साथ साथ दूसरे सी० आई० डी० भी वहाँ से चले गये। काले कोट वाले ने अकेले रहने पर मुझसे कहा, "साहब, हम क्या करें ? जैसा हुक्म मिलता है, वैसा करते हैं। न करें तो हमें भी नौकरी छोड़नी पड़े। अगर साहब हुक्म दे देंगे तो हमें कोई आपको परेशान करना अच्छा लगता है ?"

करीब १५ मिनट बाद वह लम्बे कद वाला सी० आई० डी० लौट आया। आकर उसने कहा, "साहब अभी ग़ुसल कर रहे हैं। आध घण्टे बाद जब बाहर निकलेंगे तब कुछ बातचीत हो सकेगी।"

मुझे नित्य-कर्म से निवृत्त होने की इच्छा हो रही थी। मैंने सी० आई० डी० वाले से कहा। वह मेरी हथकड़ियों की चैन पकड़े हुए चल दिया। पाखाने में बैठने पर भी वह चैन पकड़े बाहर खड़ा था। यह बड़ा भद्दा लग रहा था, किन्तु वहाँ इन सब का कोई उपचार नहीं था। दूसरे के हाथों फँस गया था। वह जैसा नाच नचा रहा था, नाचना पड़ रहा था।

मुँह हाथ धो कर लौटने पर सी० आई० डी० वाले ने फिर लम्बे कद वाले से जाकर साहब से पूछने के लिये कहा। वास्तव में वह स्वयं अब ऊब रहा था। इस समय लगभग ६॥ बज गये थे। एक दूसरे सी० आई० डी० वाले से उसने कहा, "जा देख, इनकी रोटियाँ बन गई होंगी; ले आ। यहाँ अगर देर हो गई तो इन्हें दिन भर भूखा रहना पड़ेगा।"

थोड़ी देर बाद वह सी० आई० डी० रोटी वाले को साथ लेकर लौट आया। इस वक्त वही शाम की जैसी छः रोटियाँ थीं और उरद की छिलकेदार दाल थी। मैंने खाना शुरू किया। बड़ी मुश्किल से दो रोटियाँ खाई गईं। बाकी रोटियाँ थाली में छोड़ कर मैंने पानी पिया। अबकी बार वह एक पीतल के गिलास में पानी लाया था।

खाना खाकर जैसे ही ख़त्म किया वैसे ही लम्बे कद वाला सी० आई० डी० वहाँ आ गया। उसने काले कोटवाले सी० आई० डी० के

साथ धीरे धीरे बोलकर कुछ सलाह की। इसके बाद काले कोट वाला सी० आई० डी० मुझे लेकर चल दिया और हवालात वाले बरामदे में पहुँच कर उसने जमादार को आवाज लगाई। जमादार अपनी तहमद हिलाता हुआ धीरे धीरे चाभी का गुच्छा हाथ में लिये हुए आ पहुँचा। कोने की कोठरी वाला व्यक्ति फिर अपने जँगले पर मुझे देखने के लिये आ गया था। अबकी बार मैंने देखा तो उसके मुँह पर प्रकाश पड़ रहा था। उसका चेहरा बिलकुल पीला हो गया था। उससे पहिले जब वह मुझसे बाहर मिला था तो उसका मुँह बिलकुल लाल रहा करता था।

जमादार ने आवाज करते हुए हवालात का दरवाजा खोला। मौलाना खिड़की पर पहिले से ही आकर बैठ गया था। उसके चेहरे पर भी प्रकाश पड़ रहा था। उसका चेहरा पहिले व्यक्ति से भी अधिक पीला है, यह देख कर मेरे सारे शरीर में एक सनसनी सी फैल गई। सोचने लगा कि यदि इसी हालत में दो महीने रहा तो बचना मुश्किल हो जाय।

हवालात का दरवाजा बन्द करके जमादार और सी० आई० डी० वाले वहाँ से चले गये।

× × ×

गत दिवस को जब जमादार और इन्सपेक्टर मुझे बंद करके चले गये थे उस समय रात्री का समय था और ज़्यादा देर तक भी मैं इस कोठरी में नहीं रह पाया था। दिन में आज पहिली ही बार इस कोठरी में मैं आया था। उस कोठरी का फर्श बिलकुल गीला था। सीड़न की बदबू उसमें आ रही थी। मैंने मौलाना से पूछा, "यह फर्श आज गीला क्यों है ?"

उसने कहा, 'आज यह कोठरी धोई गई है। अभी शका धोकर गया है। थोड़ी ही देर में यह सूख जायगी। आइये, थोड़ी देर खिड़की में बैठ जाइये; उसके बाद फिर यहाँ बिस्तरा लगालेंगे।

उस समय उस कोठरी में केवल मौलाना ही था। गत रात्री में उसके साथ जो व्यक्ति था वह नज़र नहीं आ रहा था। मैंने मौलाना से पूछा, 'आपके दूसरे साथी कहाँ गायब हो गये ? वे दिखाई नहीं पड़ते।'

"आपके आने से थोड़ी देर पहिले वे छोड़ दिये गये। सरकार कम्युनिस्टों को पकड़ना नहीं चाहती। बाहर रहकर ही ये सरकार की ज़्यादा मदद कर सकते हैं।"

इसके बाद उसने मेरे बारे में पूछा, 'रात को तुम्हें पीटा भी था ?"

मैंने कहा, 'पीटा तो नहीं रात भर जगाये रखा।"

"चलो, आप बच गये, नहीं तो ये सूअर आसानी से छोड़ते नहीं हैं। रात भर आपसे सवालात पूछते रहे !"

मैंने कहा 'हाँ, बड़ी बेवक़ूफ़ी की बातें वे रात भर करते रहे। मैं भी वैसे ही बेतुके जवाब देता रहा।"

"आपसे पहिले यू० पी० के एक साहब यहाँ और आये थे। उन्हें भी ये लोग रात को ले गये थे। शायद कुछ पीटा पाटा भी था। वह बड़ा कमज़ोर आदमी निकला उसने सब कुछ बता दिया। उसे दूसरे ही दिन इन्होंने दूसरी कोठरी में बंद कर दिया और १५-२० दिन बाद ही जेल भेज दिया था।"

"आपको भी तैयार रहना चाहिये। अभी तो यह पहिला ही दिन था। शायद आगे चलकर ये लोग पीटे पाटेंगे भी। एक दिन मुझे भी ये लोग रात को ले गये थे। वह इन्सपेक्टर जो कल तुम्हें पकड़ कर लाया था, मेरे घर भी वही खाना तलाशी लेने गया था। उसका नाम हसमत है। मेरे वालिद साहब से वह बड़ी मीठी बातें कर रहा था। उन्होंने इसकी बड़ी खातिर की थी। लेकिन यह बड़ा सूअर है। इसने मुझे बड़ी गालियाँ दी थीं। मेरा तो झगड़ा होते होते बच गया था। मैंने भी सोच लिया था कि साले के दो चार हथकड़ियाँ तो मार ही दूँगा।"

मैंने कहा, "गनीमत यही थी कि रात को वह इंसपेक्टर नहीं था, नहीं तो मुमकिन था झगड़ा बढ़ ही जाता।"

उसी समय मेरा ध्यान कोठरी की दीवारों पर गया। उसमें मैंने देखा कि चारों तरफ़ खून के दाग़ लगे हुए हैं। पहिले ख्याल आया कि शायद यहाँ कोई कत्ल करके आया हुआ कैदी रखा गया होगा। फिर ख्याल आया कि अगर कोई कत्ल करके भी आया होगा तो उसके शरीर और कपड़ों पर खून के दाग़ होंगे, ये दीवारों पर सैंकड़ों बूदों के रूप में दाग कैसे हो सकते हैं। जब उनका कारण किसी प्रकार भी मेरी समझ में न आया तो मैंने मौलाना से पूछा, "मौलाना, ये दीवार पर खून के दाग़ कैसे हैं?"

उसने कहा, 'ये खून के दाग यहाँ के कैदियों के ही हैं"।

मैंने उत्सुकता से पूछा, 'क्या मतलब?'

उसने हँसते हुए कहा, "कैदियों ने जो खटमल मारे हैं उनके ये दाग़ पड़ गये हैं।

मैंने फिर पूछा, 'इतने खटमल कैसे मारे गये? ये तो चारों तरफ़ दीवार पर थोड़ी थोड़ी दूर पर लगे हुए हैं।'

वह जंगले से नीचे उतर आया था। उसके साथ साथ मैं भी खिड़की से नीचे दागों को देखने के लिये उतर आया था। उसने मूँज के पड़े फट्टों को दिखाते हुए कहा, 'इनमें हर एक में हज़ारों खटमल भरे पड़े हैं। इसके अलावा बहुत से खटमल रातको तो ज़मीन पर आ जाते हैं और रातों रात खून पीकर छत पर चढ़ जाते हैं। ये दीवार पर जो दाग़ पड़े हुए हैं उन खटमलों के हैं जो छत पर रहते हैं। "दीवार और छत पर काले बिन्दुओं जैसे दाग़ों को दिखाते हुए उसने बताया, 'देखो ये सब खटमल हैं, जो खून पी पी कर अब खतरे से बाहर आराम कर रहे हैं। रात को ये सब नीचे उतर आयेंगे।"

मैंने गौर से देखा तो वास्तव में मौलाना का कहना ठीक था।

दीवार पर खून के दाग खटमलों को अंगूठों से रगड़ कर मारने से बने हुए थे। कुछ खून के दागों के निचले हिस्से में खटमल का मृत शरीर भी लगा हुआ था। दीवार पर चढ़ते हुए दो चार खटमल दिखाई भी पड़े।

इसके बाद वह मुझे उस कोठरी के दूसरे कोने में ले गया। वहाँ फटे हुए कम्बलों का ढेर लगा हुआ था। उसने दो तीन कम्बल के टुकड़े उठाकर इधर उधर डाले। वे कम्बल के एक एक, दो दो फीट के टुकड़े रह गये थे। उनको दिखाते हुए वह बोला, "यह यहाँ का दूसरा खजाना है।"

मैंने कहा, "इसका क्या मतलब?"

मुस्कराते हुए वह बोला, "इनमें, जूँ ही जूँ भरी हुई हैं।" यह कहते हुए उसने कम्बल का एक टुकड़ा उठा लिया और उसको गौर से देखने लगा। उसके बाद वह बोला "देखो, ये कितनी सारी जूँए एक ही जगह में चल रही हैं।"

मैंने सिर झुका कर देखा। वास्तव में बड़ी मोटी मोटी बहुत सी जूँए उस पर चल रही थीं। मैंने कहा, 'यार फैंको, नहींतो तुम्हारे ऊपर ये चढ़ जायेंगी।"

कम्बल के टुकड़े को नीचे डालते हुए वह बोला। इस कोठरी में रहने के बाद इन खटमलों से और जूओं से बचना मुमकिन नहीं। रात को जब ये शिकार खोजने निकलते हैं तब इनसे बचना सम्भव नहीं। इनसे किसी तरह भी बचाव नहीं हो सकता। मैं तो अपनी दरी के नीचे बाहर तक निकालते हुए एक सफेद चादर बिछा देता हूँ जिससे जो खटमल आये दिखाई पड़ जाय; लेकिन ज्यों ही आँख लगती है त्यों ही ये काटना शुरू कर देते हैं। ये चलते भी बड़ी तेज हैं।"

कोठरी का एक तरफ का हिस्सा सूखने लगा था। मौलाना ने, कहा, 'देखो, इधर का हिस्सा बिलकुल सूख गया। इस पर अब बिस्तर बिछा कर तुम सोजाओ। शायद वे तुम्हें बुलाने फिर आयें थोड़ी सी

तो नींद ले ही लोगे। अगर आज दिन में बुलाने नहीं आये तो रात को फिर जगाने के लिये ले जा सकते हैं।"

मैंने और मौलाना ने सूखी हुई जगह में बिस्तर लगा दिया। मौलाना जाकर खिड़की पर बैठ गया। वहाँ से टेढ़ा देखने पर कोतवाली में आने और जाने वाले व्यक्ति दिखाई पड़ते थे। हवालात की कोठरियों के सामने बरामदे के बाद एक दीवार बना दीगई थी जिससे कोठरियों के लोगों को अन्य लोग न देखें और वे दूसरे लोगों को न देख सकें।

बिस्तरे में लेटते ही मुझे नींद आगई। उस नींद में बड़े अजीब अजीब से स्वप्न दिखाई दिये। इलाहाबाद में राजाराम नाम का सुनार का एक लड़का हमारे साथ था। उसे हम राजू कहा करते थे। एक दिन एक प्रेस को चुराते हुए वह पकड़ा गया। उसके बाद वह पुलिस से मिल गया था। उसने हमारे साथियों के रहने का स्थान और नाम बता दिया था। मेरे यहाँ भो वह पुलिस के साथ रेड में गया था।

स्वप्न में मुझे दिखाई पड़ा कि हथकड़ी डाल कर वे लोग मुझे एक कमरे में लेगये हैं। उस कमरे में इतना अन्धेरा है कि दिन में भी बिजली की बत्ती जलानी पड़ती है। उस कमरे में कोई भी रोशनदान नहीं है। बीचोंबीच कमरे में एक मेज पड़ी हुई है। उस मेज के सामने वाली कुर्सी पर उनका अफसर बैठा हुआ है। अफसर के दायें तरफ वह इन्स्पेक्टर बैठा हुआ है। दो चार सी० आई० डी० वाले इधर उधर खड़े हुए हैं। मुझे लेजाकर उन लोगों ने मेज के सामने खड़ा कर दिया। मेरे हाथों को पीछे करके उसमें उन्होंने हथकड़ियाँ डाल दीं।

अफसर ने एक सी० आई० डी० वाले को इशारा किया। वह राजू को साथ लिये वहाँ आगया। राजू एक धारीदार कमीज पहिने था और ऊपर से एक लाल पुलोवर। उसकी आँखों से कठोरता झलक रही थी। उसने उसी प्रकार की दृष्टि से एक बार मेरी तरफ

देखा और फिर नीचा सिर करके वह अफसर की तरफ को मुँह करके खड़ा होगया।

अफसर ने उससे पूछा, "तुम इनको जानते हो?"

उसने सिर उठाकर कहा, "जी हाँ; खूब अच्छी तरह।"

अफसर ने फिर पूछा, "तुम इन्हें कब से जानते हो?"

अपने पैरों के अँगूठे से जमीन खोदने का प्रयत्न करते हुए उसने उत्तर दिया, "मैं इन्हें इलाहाबाद से जानता हूँ।"

'अच्छा, इनके बारे में और क्या जानते हो, सब बताओ!"

उसने पहिले दिनकी मुलाकात से प्रारम्भ करके एक के बाद एक घटना का वर्णन विस्तार पूर्वक करना शुरू किया। वह व्यक्तियों के नाम भी बता रहा था। जो लोग पकड़ लिये गये थे उनके विषय में भी कहता जाता था और जो अभी पकड़े नहीं गये थे उनके बारे में भी उसे जहाँ तक मालूम था वह सब बताता जाता था। बताते बताते वह हमारी साइकिलो स्टाइल मशीनों और दूसरी चीजों का वर्णन करने लगा। मेरे दिमाग में खून चढ़ने लगा। यकायक आवेश में आकर मैंने चिल्ला कर कहा, 'राजू'।

उसने मेरी तरफ उपेक्षा और घृणा पूर्ण दृष्टि से देखा और कहने लगा, "मुझे डराते क्या हो! मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ। मैं सब सच कह रहा हूँ।"

मैंने अपना सिर नीचा कर लिया था। अफसर और दारोगा मेरी तरफ देखने लगे। पास में खड़े हुए सी० आई० डी० ने हाथ की जंजीर को और मजबूती से पकड़ लिया।

राजू एक ही ढंग से, एक सी ही कठोर आवाज में कहता जारहा था। मुझे लगा कि खून का दौरान मस्तिष्क की तरफ और जोर से जारहा है। कुछ चेतना विहीन सा होकर मैं गिरने वाला ही था। उसी क्षण मेरी आँख खुल गई। देखा शाम होगई है। कोठरी में

अँधेरा सा होगया है। मौलाना कोठरी में टहल रहा था ! अभी तक बिजली की बत्ती जलाई नहीं गई थी।

लेटा लेटा मैं स्वप्न के बारे में सोचता रहा। मुझे जगा हुआ देख कर मौलाना ने टहलना बन्द कर दिया और खड़े होकर उसने पूछा, "खूब सो लिये!"

"हाँ ! क्या बजा होगा ? नींद तो खूब आई !"

मौलाना ने कहा, "अब ५॥ का वक्त होगा। सोते में तुमने कुछ जोर से कहा था। क्या स्वप्न देख रहे थे ?"

बिस्तरे से उठते हुए मैंने कहा, "हाँ ! एक लड़का पुलिसवालों से मिल गया है। वही ख्वाब में दिखाई पड़ा था। वह हमारे खिलाफ सब बातें कर रहा था। इसी प्रकार की ऊटपटाँग बातें स्वप्न में देख रहा था।"

मैं भी उठकर मौलाना के साथ टहलने लगा। मैंने पूछा, "मौलाना, यह श्यामलाल ऐसा कैसे हो गया ? बाहर कुछ दिनों पहिले मैं जब इससे मिला था, तब इसका रंग बिलकुल लाल था और यह खूब तन्दुरुस्त था।"

श्यामलाल वही व्यक्ति था, जो पहिली कोठरी में बन्द था। वह पहिले खद्दर आश्रम में काम करता था। जब से खद्दर आश्रम बन्द हो गया, तब से वह भी आंदोलन में काम करने लगा।

मौलाना ने कहा, "हाँ ! श्यामलाल ने गांधी जी के अनशन के दिनों में सत्याग्रह किया था। सीताराम के बाज़ार में १७ ता० को पकड़ा गया था। यहाँ पर आकर उसने उपवास करना शुरू कर दिया। जब मैं यहाँ लाया गया तो वह उपवास कर रहा था। इसकी हालत उन दिनों बहुत ख़राब हो गई थी। मैंने इससे उपवास न रखने के लिये समझाया भी, लेकिन इसने मेरा कहना नहीं माना। अब तो यह कुछ अच्छा हो गया है। इससे कुछ दिनों पहिले तो इसकी बहुत ही बुरी हालत हो गई थी। सुबह को पाखाना जाते वक्त मैं इसे देखा करता था। उस वक्त इसकी हड्डियाँ निकल आई थीं। यहाँ हवालात में आकर तुम मर भी जाओ तो कोई पूछने वाला नहीं। अगर बीमार पड़ जाओ तो यहाँ कोई पानी पिलाने तक नहीं आता। जिस दिन प्राण-पखेरू उड़ जाते, उसी दिन डोम उठाने आता। लेकिन खद्दर आश्रम का है न, कुछ सिड़ी हो जाते हैं, ये खद्दर आश्रम वाले।"

मैंने मौलाना से बताया कि मैं श्यामलाल को नमस्कार करने वाला था लेकिन उसने होठों पर उँगली रखकर मुझसे बोलने के लिये मना कर दिया था।

"उसने ठीक ही किया। यहाँ पर दिन में चारों तरफ सी० आई० डी० वाले रहते हैं। इसलिये हम लोग आपस में भी बात चीत नहीं करते। रात को सी० आई० डी० वाले सब चले जाते हैं, बस पहरे वाला संतरी रह जाता है। ये लोग पुलिस के हैं और पंजाबी गँवार हैं। ये ज़्यादा बातों को नहीं समझते, उसी समय हम लोग बैठकर बातचीत करते हैं। फिर एक बात और है, रात को जल्दी से सो जाने से और दिन में सोने से तबियत ख़राब होने लगती है। दिन रात ही तो बन्द रहते हैं। धूप तो एक मिनिट भी नसीब नहीं होती। अगर आज रात को ये लोग तुम्हें नहीं ले गये तो रात को तुम बात चीत कर लेना।"

थोड़ी देर टहलने के बाद उसने मुझसे पूछा, "तुमको सिगरेट पीने की आदत है ?"

मैंने कहा, 'हाँ कुछ दिनों से सिगरेट पीने की आदत पड़ गई है। लेकिन कोई ऐसी बात नहीं है। अब मैं इसे छोड़ ही दूँगा। फिर, यहाँ हवालात में वैसे भी तो नहीं मिलेगी।"

"अगर छोड़ दो तो बहुत ही अच्छा है, नहीं तो आगे चलकर यह आदत तुमको तकलीफ देगी। आज देखो, मैं तुम्हारे लिये सिगरेटों का इन्तज़ाम किये देता हूँ।"

मैंने कहा, "रहने दीजिये, आप इन्तजाम कहाँ करेंगे ? बेकार

तवालत मोल लेने से क्या फायदा ? मैं आज से पीना ही छोड़ दूँगा।"

टहलते हुए वह बोला, "नहीं ऐसी बात नहीं है। देखिये, अभी शका आता होगा, उसी से आपकी सिगरेट मँगाता हूँ। इससे पहिले भी मैंने यहाँ जो कैदी आते हैं उनके लिये भी बीड़ियाँ मँगाई थीं।"

थोड़ी देर टहलने के बाद ही मशक लिये हुए शका वहाँ पर आ गया। मौलाना एक तरफ दीवार की ओट में खड़ा हो गया। वहाँ खड़े होकर उसने अपने पाजामे के कमरबन्द में से रुपयों की मुसी हुई एक गड्डी निकाली। उसमें एक एक रुपये के कुछ नोट थे। एक नोट उसने बाहर निकाल लिया। वह नोट मुट्ठी में दबाये हुए और अपना टूँटीदार लोटा लिये हुए दरवाजे पर पहुँच गया। लोटा उसने जमीन पर रख दिया और वह नोट शके को देते हुए कहने लगा, "देखो इसमें से एक सिगरेट की डिब्बी, एक दियासलाई और एक बीड़ियों का बण्डल लेते आना। दो आना पैसा अपना रख कर बाकी लौटा देना।"

शका ज़रा हिचका। इधर उधर देख कर मौलाना ने कहा, "घबराओ नहीं, ले जाओ कोई नहीं देख रहा है।"

शके के चले जाने के बाद हम लोग फिर उस कोठरी में इधर उधर टहलने लगे। टहलते हुए मैंने पूछा, "मौलाना इस शके को तुमने कैसे पटा लिया ? यहाँ तो जिसे देखता हूँ वह बात ही नहीं करता हरएक आदमी बड़ा घाघ नज़र पड़ता है। कुछ तो जान बूझकर पास नहीं आते और कुछ डरते हैं।"

वह बोला, "मुझसे पहिले यहाँ पर मौ० राशिद थे। जब मैं यहाँ हवालात में आया तो वे दो दिन मेरे साथ थे। वे इस शके को पहिले से जानते थे। यह मोमिन है और मजलिस का मेम्बर है। यह उन्हीं का चेला है। वे ही चलते वक्त इससे मेरा काम करने के लिये कह

गये थे। तभी से यह मेरा तो हर एक काम कर देता है। तुम्हें अगर किसी चीज की जरूरत हो तो बिना तकल्लुफ के बता देना। बाहर मेरा एक दोस्त है, उसके पास मैं इसके ज़रिये पर्चा भेज दूँगा। वह इसको वह चीज़ दे देगा।"

मैंने कहा, "मुझे किसी और चीज़ की तो ज़रूरत नहीं, मगर मैं सोचता हूँ, यहाँ दिन भर कैसे कटा करेगा। अगर मुमकिन हो सके तो इससे अखबार मँगवाओ।"

"हाँ, इसमें क्या बड़ी बात है। यह अखबार ले आया करेगा और पढ़ने के बाद रोजाना लौटा दिया करेंगे। कल सुबह मैं इसे पर्चा लिख कर दे दूँगा। मेरा दोस्त जो बाहर है बाकी इन्तजाम वह कर देगा। अच्छा, यह बताओ कौन सा अखबार मँगाया जाय।"

मैंने कहा, "हिन्दुस्तान टाइम्स के लिये लिख देना। हिन्दी, उर्दू के अखबारों में तो खबर ठीक नहीं आती।"

इसके बाद थोड़ी देर तक हम लोग और टहलते रहे। बाहर से बटन दबाकर संतरी ने कोठरी में रोशनी कर दी। इसके बाद हिन्दू खाना लाने वाला मेरे लिये रोटी और तरकारी ले आया। जब वह रोटी तरकारी देकर चलने लगा तो मैंने उससे कहा कि जाकर वह मुसलमान मेस में कह दे और मौलाना का खाना भी जल्दी भिजवा दे। अपना खाना रखकर मैं बैठ गया और मौलाना के खाना आने का इन्तजार करने लगा। इतने में ही मौलाना का खाना लिये हुए बूढ़ा दाढ़ी वाला मुसलमान आ पहुँचा। मौलाना के खाने में, सुबह को धोई हुई उड़द की दाल मिलती थी और शाम को गोश्त रोटी। मौलाना और मैं खाना खाने बैठ गये। मैंने मौलाना से पूछा, "यहाँ यह खाना देने का क्या हिसाब है ?"

वह बोला, "हम लोगों को ये ६ आने पैसे देते हैं। ६ आने की यह दोनों वक्त की रोटी लगाते हैं। इसके अलावा ३ आने पैसे और बचते हैं। इसके जो चाहो मँगा सकते हो। मैं तो सुबह को दही मँगा लेता हूँ।"

मैंने पूछा, "अगर किसी दिन मैं इसके यहाँ का खाना न खाऊँ तो इन ६ आने पैसे का कुछ मँगवा सकता हूँ ?"

"हाँ मँगवा सकते हो। लेकिन इसमें कुछ फायदा नहीं। एक तो आज कल सारी चीजें इतनी महँगी मिलती हैं कि ६ आने में किसी तरह भी पेट नहीं भरता। फिर बाज़ार से मँगवाने में ६ आने में सिर्फ ६ आने की चीजें ये लाकर देते हैं।"

मैंने पूछा, "मौलाना तुम बाहर ही कमजोर थे या यहाँ आकर इतने कमजोर हो गये हो।"

वह जरा सकुचा कर बोला, "नहीं, बाहर तो यार मैं खूब तन्दुरुस्त था। यहाँ दिन भर बन्द रहता हूँ और जाड़ों में भी एक मिनट को भी धूप नहीं मिलती। जब से यहाँ आया हूँ सूरज भी दिखाई नहीं पड़ा। इसके साथ साथ ये लोग जो गोश्त देते हैं वह बड़ा ख़राब और सड़ा हुआ होता है।"

मैंने कहा, "तो तुम गोश्त छोड़ क्यों नहीं देते ?"

"लेकिन शाम को सिवा गोश्त के ये और कुछ बनाते भी तो नहीं। रूखी रोटियाँ खानी भी तो मुश्किल है।"

"अच्छा हम लोग एक चीज कर सकते हैं। मैं तो मुश्किल से दो रोटियाँ खा पाता हूँ और देखता हूँ तुम भी इससे ज़्यादा नहीं खा पाते। ऐसा क्यों न करें कि सुबह को तुम्हारे यहाँ उड़द की दाल बनती है। सुबह को बस तुम अकेले अपना खाना मँगा लिया करो और उसमें से हम दोनों खा लिया करेंगे और शाम को हमारे यहाँ तरकारी वगैरह बनती है, शाम को मैं अपने यहाँ से खाना मँगवा लिया करूँगा। बाकी जो पैसे बचेंगे तो उसका हम लोग दही और दूध मँगवा लिया करेंगे।"

"हाँ, है तो ठीक, लेकिन ये लोग ज़्यादा दिन यह चलने नहीं देंगे।"

"ख़ैर ! जब तक चले तब तक ऐसा ही किया जाय।"

इसके बाद हमने यही तय कर लिया कि इसी तरह सुबह को मौलाना और शाम को मैं अपने यहाँ से खाना मँगवाया करूँगा।

उस दिन रात को कोई भी मेरी खैर खबर लेने नहीं आया। मैं पहिले तो डरता रहा कि शायद अब वे लोग आयें। लेकिन जब रात को ९ बजे तक कोई नहीं आया तो निश्चिन्त हो गया कि अब कोई नहीं आयेगा।

रात को नौ बजे के बाद कोतवाली में बिलकुल खामोशी हो जाती है। हमारी कोठरियों के सामने सिपाही संगीन हाथ में लिये बरामदे के पत्थरों पर बूटों की ऐड़ियों की आवाज करता हुआ इधर से उधर तक बरामदे में घूम कर पहरा लगा रहा था। हम लोग अपनी कोठरी की खिड़की पर बैठ गये। थोड़ी ही देर बाद पास की कोठरी से श्याम लाल की आवाज़ आई, "जगदीश बाबू, कहिये कल रात को कैसी कटी !" उसके उत्तर में मैंने रात को सी० आई० डी० वालों से बात चीत और उनके जगाने का किस्सा बता दिया। इसके अलावा और भी बहुत सी बातें श्यामलाल से अन्य साथियों के विषय में करता रहा। उसने बताया कि उसने मुझसे बोलने के लिये क्यों मना कर दिया था। क्योंकि अगर उन्हें यह मालूम हो जाता कि मैं श्यामलाल को जानता हूँ तो मुझसे सवाल पूछते कि मैं श्यामलाल को कैसे जानता हूँ ! कहाँ उससे मिला था ? क्यों उससे मिला था ? और फिर मुझसे सवाल पूछ कर वे श्यामलाल से पूछते कि वह मुझसे कहाँ मिला था ? क्यों मिला था ?

इस प्रकार के अलग अलग व्यक्ति से सवाल पूछने में दोनों झूठ बोलकर वास्तविक बात छिपाने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन वे लोग एक की बात दूसरे से कह कह करके दोनों को चक्कर में फाँस लेते हैं। इसलिये जहाँ तक हो उन्हें ऐसे प्रश्न करने का मौका ही नहीं देना चाहिये और अगर ऐसे सवाल हों भी तो उनका कम से कम शब्दों में गोल जवाब देना ही ठीक होता है।

हमारी कोठरी बीच में थी। जब हम लोग बात करने लगे तो दूसरी पास वाली कोठरी का व्यक्ति भी अपने जँगले पर आकर बैठ गया और बातों में सहयोग देने लगा। मैंने मौलाना से पूछा कि वह व्यक्ति कौन है।

मौलाना ने उसका नाम (जो मैं भूल गया) बताते हुए कहा, "यह भी बड़ा अक्खड़ आदमी है। जब यह पकड़ा गया तो इसकी जेब में कुछ कागज थे जिन पर कुछ पते वगैरह लिखे हुए थे। उसको उन लोगों ने काजी हौज पर बाजार में जाते हुए पकड़ा था। जैसे ही उन लोगों ने इसे पीछे से आकर पकड़ा, वैसे ही इसने वे कागज अपने मुँह में रख लिये। उन लोगों ने इसके मुँह पर बड़े घूँसे मारे जिससे यह उन कागजों को उगल दे, लेकिन यह उनको खा ही गया। जब यह पकड़ कर लाया गया था तो इसके मुँह से खून निकल रहा था। शायद इसका एक आध दाँत भी टूट गया। इसके बाद एक दिन और इसे वे लोग निकाल कर ले गये थे। कुछ पीटा भी था। इसके बाद से कोई नहीं आता है। इसको यहाँ अकेला बन्द करके छोड़ दिया है।"

रात को बहुत देर तक हम लोगों की बात चीत होती रही। श्याम लाल गोल भाषा में बहुत से साथियों के बारे में संकेतात्मक ढंग से बात चीत कर रहा था और उसी भाषा में मैं उसे उत्तर दे रहा था। अन्य अपरिचित व्यक्ति को वे बातें बड़ी असंबंधित सी लगतीं किन्तु हमारे आपस में समझने के लिये वे बिलकुल सरल थीं। हालाँकि उस समय अधिक भय नहीं था; फिर भी, मुझे श्यामलाल के शब्द याद थे। बातों के प्रारम्भ में ही उसने कहा था, "होशियारी से बात कीजियेगा। यहां दीवारों के भी कान हैं। यह दुश्मनों का घर है।" वास्तव में उसकी बात ठीक भी थी। एक गलती से निकला हुआ शब्द, गैर से सुनी गई एक छोटी सी बात किसी व्यक्ति को फँसाने के लिये काफी थी।

जब कोतवाली के घण्टे में १॥ का घण्टा बजा तब हम लोग सोने के लिये उठ गये। मेरे पास सोने के लिये कोई कपड़ा नहीं था। यहाँ जो मूँज के फट्टे थे उनमें खटमल इतने थे कि उन पर सोने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। मौलाना ने अपने बिस्तरे में से एक दरी, एक चादर और एक कम्बल निकाल कर मुझे दिया। उसके पास एक गद्दा और एक लिहाफ बच गया था। दरी बिछा कर, सिरहाने की तरफ मैंने अपनी पेंट लगा ली। कम्बल के ऊपर चादर डाल दी और मौलाना से मैंने कहा, "मेरा ऊनी कोट भी ज़रा मेरे पैरों पर डाल देना।"

थोड़ी देर बाद नींद आ गई।

× × ×

दूसरे दिन ठंड लगने के कारण आँख जल्दी खुल गई। मुँह से कम्बल हटाकर जो देखा तो मालूम हुआ कि मौलाना मुझसे पहिले ही उठ गया है। वह अपनी नमाज पढ़ने की छोटी दरी बिछाए हुए उस पर नमाज पढ़ रहा था। मैं थोड़ी देर तक तो लेटा रहा इसके बाद कोट पहिन कर कोठरी में घूमने लगा जँगले के पास बाहर पानी की बाल्टी रखी हुई थी। उसके पास जाकर देखा तो उसमें एक गिलास भी पड़ा हुआ था। एक गिलास पानी पीकर फिर उस कोठरी में मैंने घूमना शुरू कर दिया।

थोड़ी देर में मौलाना भी नमाज पढ़कर उठ बैठा। वह भी मेरे साथ घूमने लगा। उसने घूमते हुए मुझसे पूछा, "रात को ठंड तो नहीं लगी?"

"मैंने कहा ठंड तो लगी, लेकिन नींद अच्छी आई, सुबह के वक्त थोड़ी ठंड लगी थी।"

इसके बाद वह बताने लगा कि ये लोग अब बाहर निकालेंगे। उसी समय पाखाना होकर मुँह हाथ भी धो लेना। और अगर नहाना चाहो तो उसी वक्त नहा भी लेना वरना शाम तक ये लोग फिर बाहर नहीं निकालेंगे। मेरे पास नहाने के बाद पहिनने को कोई कपड़ा नहीं था। उसने अपना तौलिया मुझे देते हुए कहा, "अंडर वियर तो

आप पहिने हैं ही। इसको पहिन कर ही नहा लेना। नहाने के बाद बदन पोंछ कर यही तौलिया पहिन कर चले आना। यहाँ आकर अपना पैंट पहिन लेना।"

वे लोग थोड़ी देर बाद बाहर निकालने के लिये आ गये। एक एक करके वे ले जाते थे और हर एक आदमी जब सब कार्यों से छुट्टी पा जाता था तब वे उसको बंद कर जाते थे और उसके बाद दूसरे को बाहर निकालते थे। ऐसा करने में उनका एक विशेष मंतव्य यह भी था कि जिससे हम लोग आपस में मिलकर बातचीत न कर सकें। चलते वक्त श्यामलाल ने एक पुड़िया मुझे दे दी थी। उसमें कहीं से पिसा हुआ कोयला उसने मँगा लिया था। यही हमारा मंजन था। लौटते समय वह पुड़िया मैं उसके जंगले पर रख आया था।

मौलाना के लौट आने पर हम लोगों ने फिर उस कोठरी में टहलना शुरू किया। टहलते हुए आंदोलन के विषय पर बातचीत छिड़ गई। मौलाना वहाँ के कुछ कार्यकर्ताओं के व्यवहार से बहुत नाखुश था। वह कहने लगा, यहाँ पर लोगों ने बड़ी बे परवाही के साथ काम किया। आपसे मैं बताऊँ (एक व्यक्ति का नाम लेकर उसने कहा) उनके पास पकड़े जाने पर एक डायरी मिली। इस डायरी में जनाब ने हिसाब लिख रखा था और हिसाब के साथ जो लोग उनके साथ काम करते थे उनका नाम लिख रखा था। कुल मिलाकर करीब ६० नाम थे और हिसाब होगा करीब एक हज़ार रुपये का। इसके बाद डायरी में लिखे सब आदमियों का पता लगा लगा कर पुलिस ने रेड किया और ज्यादातर लोगों को पकड़ लिया। मेरे यहाँ के प्रेस का इन सी० आई० डी० वालों को सात जन्म तक पता नहीं लगता लेकिन साथियों की मेहरबानी। मैंने मना कर दिया था कि किसी आदमी को भी मेरे घर पर मत लाना। लेकिन देखिये रोजाना एक न एक नया आदमी वहाँ पहुंच ही जाता था। और जब एक दो बार मैंने कहा तो कहने लगे यह हमारा खास आदमी है, बहुत

इतमीनान का आदमी है; अगर खास या इत्मीनान का आदमी है भी तो क्या जरूरत थी कि हर आदमी को, हर जगह और हर बात बता दी जाय।"

इसी प्रकार की और बहुत सी बातें वह बताता रहा। किस तरह से कौन पकड़ा गया किसने किसका नाम बताया, किस किस पर सी० आई० डी० होने का शक है, इत्यादि।

इसके बाद आंदोलन के अन्य अंगों पर बातचीत होने लगी। इस आंदोलन की असफलताओं पर विचार होने लगा। मैंने कहा, "अगर मुसलमान पूरी तरह से इस आंदोलन में भाग लेते तो यह कई गुना और ज़ोर से होता।"

मौलाना इस पर आवेश में आकर बोला, "माफ़ कीजिये आपके कांग्रेस के बड़े नेताओं की इसमें ग़लती थी। मैं जानता हूँ मुसलमानों में से जमैयत, आज़ाद मुसलमान, और उलेमा वगैरह कांग्रेस के लीडरों के पास गये थे। उन लोगों ने कहा था कि हम आपके साथ हैं आप लीग के पीछे क्यों पड़े हुए हैं? आप हमको साथ लेकर काम क्यों नहीं करते? इस पर आपको मालूम नहीं उनको क्या जवाब दिया गया था? उनसे कहा गया कि हम आपसे बात क्या करें, आप तो हिन्दुस्तान के मुसलमानों की नुमाइन्दगी ही नहीं करते।"

वास्तव में कई बार मैंने भी इस बात को सोचा था बेकार को हम लोग लीग को बढ़ावा देते जाते थे। पहिले हमने उसका विरोध करके उसका नाम कर दिया। इसके बाद, बार बार समझौते के लिये मिल मिल कर उनको ऊँचा चढ़ा दिया। वास्तव में यदि हम उन मुसलमान जमायतों को मदद देते, साथ में लेते और लीग की तरफ़ ज्यादा ध्यान नहीं देते तो संभव था लीग की ताकत खत्म हो जाती। कांग्रेस के साथ उस समय आने के लिये काफ़ी मुसलमान थे। किन्तु वे दूसरी दूसरी जमायतों में बँधे हुए थे। मौलाना की बातों में भी सत्य था। वह लीग का कट्टर दुश्मन था। वह उसे देश विरोधी संस्था कहा

करता था। वह भी सच्चा मुसलमान था। मुसलमान होने का उसे फ़क था। बाकायदा नमाज़ पढ़ता था। लेकिन जिन्ना से वह नफ़रत करता था। दिल्ली में आंदोलन के दिनों में सबसे अधिक मुसलमानों ने साथ दिया था।

मौलाना की बात का जबाब देते हुए मैंने कहा, "मौलाना यह तो तुम ठीक कहते हो, लेकिन ख्याल करने की एक बात यह है कि यह हमारे मुल्क का मुसीबत का वक्त था। जिन्दगी और मौत का सवाल था। हिन्दुस्तान की इज्जत का सवाल था। ऐसे वक्त में मान और इज्जत का तकल्लुफ़ नहीं किया जाता। अगर वे जमायतें दिल से हिन्दुस्तान की आज़ादी चाहती थीं तो उन्हें कांग्रेस के न साथ लेने पर भी इसका खुल्लम खुल्ला ऐलान कर देना चाहिए था। हिन्दुस्तान की इस जंग में उन्हें पूरा भाग लेना चाहिये था। इससे उनका अपमान नहीं होता बल्कि उनकी इज्जत हिन्दुस्तान के लोगों के दिलों में सौ गुना हो जाती। यही चीज बहादुरी की होती। वे भी हिन्दुस्तान के आज़ाद पसंद लोगों के दिलों में घर कर लेते। उनका इस तरह से आंदोलन से अलग हो जाना उनकी शान के खिलाफ़ चीज़ थी।"

मौलाना खामोश हो गया था। चीज एक बहस के रूप में आगई थी। कुछ देर तक हम लोग दोनों खामोश रहे इसके बाद बातों का सिलसिला फिर शुरू हुआ। वह आंदोलन के विषय में और बहुत सी बातें कहने लगा। वह मेरी बातों से चिढ़ा नहीं था। वह तो कार्य करने में विश्वास करता था और उसने, जहाँ तक हो सका, अपने बिचारों को पूरा करने के लिये किया भी। वह उन लोगों में से था जो ज्यादा बहस और आलोचना नहीं करते बल्कि मौका पड़ने पर अपने कार्यों से वे यह दिखा देते हैं कि बहस और आलोचना करने वाले लोगों से काम पड़ने पर वे ज्यादा काम कर सकते हैं।

उसने कहा "देखिये यह बगावत तो हमने कर डाली।

लेकिन, कैसे बेढंगे तरीके से हमने सब कुछ किया। जिसके जो मन में आया वही कर रहा है। न कोई किसी से पूछता है और न बताने वाले ही मिलते हैं। अगर यह चीज़ कायदे से हुई होती तो इसका कितना असर होता; जितना हुआ है उससे सौ गुना ज़्यादा जोर के साथ सब काम होता।"

मैंने कहा, "हाँ, मौलाना, आपका कहना बिलकुल ठीक है। वास्तव में आखिरी दिन तक वर्किंग कमेटी तक के लोगों को ठीक पता नहीं था कि आंदोलन कैसे करना है। सब लोग कहते थे कि आंदोलन होगा, आंदोलन होगा। उसके साथ साथ यह भी कहते थे कि यह आंदोलन सब आंदोलनों से बड़ा होगा। किन्तु कैसे यह आंदोलन किया जायगा इसके बारे में सब खामोश थे। सब कहते थे कि महात्मा गांधी ही बतायेंगे। और महात्मा गांधी को विश्वास था कि सरकार उनको पकड़ेगी नहीं; बल्कि जब दिल्ली से बंबई खबर भेजी गई कि आप लोग पकड़े जाने वाले हैं तो किसी ने इस खबर पर विश्वास नहीं किया।"

"बहुत दिनों तक काम करने वालों में आपस में इसी बात पर झगड़ा होता रहा कि यह अहिंसा है या हिंसा। ऐसी परिस्थितियों में वास्तव में काम विद्यार्थियों ने और गांव के किसानों ने किया। हमारे नेताओं के पकड़े जाने के बाद जिस तरह का व्यवहार सरकार ने किया यदि उसका जवाब न दिया जाता तो हिन्दुस्तान के इतिहास में हिन्दुस्तान के नौजवानों के मुख पर कलंक का टीका लग जाता। सारा हिन्दुस्तान इस अपमान का अनुभव कर रहा था। अगर विद्यार्थी और किसान इस अपमान के खिलाफ़ आवाज़ न उठाते तो हिन्दुस्तान में कायरता बढ़ जाती। हम शुरू से जानते थे कि हम सफल नहीं हो सकेंगे किन्तु अपमान को सहकर चुपचाप बैठ जाना भी तो कायरता होती; मर जाना उससे हज़ार गुना अच्छा था। मौलाना! मेरे साथ काम करने के लिये जो लोग आते थे उनसे मैं पहिले ही कह देता था,

'देखो दोस्तो ! इस आंदोलन से अभी हम हिन्दुस्तान से अँग्रेज़ों को निकाल नहीं सकते । उनके पास ताकत है; हमारे नेता भी जेलों में पड़े हुए हैं । लेकिन, अगर तुम हिन्दुस्तान की इज़्ज़त का थोड़ा भी ख्याल रखते हो तो आओ, यह तुम्हारे सीखने का मौका है । वास्तविक राजनीति के सीखने का इससे अच्छा मौका जीवन भर नहीं मिलेगा । आने वाले स्वतन्त्रता-संग्राम में तुम्हारा यह अनुभव तुम्हें रास्ता दिखायेगा । हममें से बहुत से साथ में नहीं रहेंगे । लेकिन जो रह जायँगे वे तप कर निकलगे । वे मुसीबतों से मजबूत होकर निकलेंगे और वास्तव में ऐसा हुआ भी । आन्दोलन के एक एक दिनमें जीवन का जितना अनुभव हमने किया, वह सारी लाइब्रेरी समाप्त करके भी नहीं कर सकते थे । विचारों की दुनिया में और वास्तविकता में बड़ा अन्तर होता है । जो कुछ हमने किया उसके लिये हमें दुःख नहीं है । जो कुछ हमने किया वह अपनी जिम्मेदारी पर किया; हमें किसी से शिकायत नहीं । और जो ऐसी परिस्थितियों में हमने सबसे ठीक समझा वह हमने किया । उसमें किसी से पूछने की या सलाह लेने की जरूरत ही नहीं थी ।"

मौलाना चुपचाप सुन रहा था । मैं कहता गया, "मौलाना, अंग्रेजों ने काँग्रेस के खिलाफ एक किताब निकाल कर, काँग्रेस को इस बात का दोषी ठहराया है कि उसने संगठित रूप में हिंसा की; उनका कहना है कि पञ्जाब और बङ्गाल को अलग करने के लिये बिहार में रेलवे की लाइनें तोड़ी ग । लेकिन यह बिलकुल गलत है । आन्दोलन का संगठन किसी ने किया ही नहीं था । नहीं तो नकशा ही दूसरा होता; अंग्रेज इतनी आसानी से उसे दबा नहीं पाता और उसकी जान के लाले पड़ जाते । संगठन में एक भारी शक्ति होती है और जो लगभग सारे भारतवर्ष में एक ही ढंग का कार्यक्रम बनाया गया, उसका उत्तरदायित्व मि० एमरी पर है । उसने पहिले पहिल एक प्रोग्राम रेडियो पर यह बताते हुए कहा था कि काँग्रेस तो यह करने

जा रही थी । अगर हम काँग्रेस के नेताओं को नहीं पकड़ते तो वे ऐसा करते । जनता तो बिलकुल अँधेरे में थी । अखबार भी बन्द हागये थे । उसने इसे ही काँग्रेस का प्रोग्राम समझा और वैसा हो किया । अगर हिंसा के लिए हम लोगों ने संगठन किया होता तो जो नज़ारे जो आन्दोलन में देखने को मिले उनका रूप बदला हुआ होता । मैंने देखा कि लोगोंने अंग्रेज के हाथ से रिवालवर भरा हुआ छीना । अर छीन कर उससे अँग्रेज को मारा नहीं बल्कि उसके सामने उसे दरिया में फेंक दिया । अहिंसा की सीमा इस हद तक हिन्दुस्तान में बढ़ गई थी । यदि सरकार अन्धेपने से हमारे बच्चों, बूढ़ों और आदमियों को गोली का शिकार न बनाती ; अगर वे लोग हमारे गरीब किसानों के घरों को यों हीं न फूँक देते तो हम हरगिज हिंसा न करते ।"

उन्होंने हमारे नारों का जवाब मशीनगनों और बन्दूकों से दिया । फिर भी वे कहते हैं हिंसा हमने की । अंग्रेज की यह खासियत है कि वह दुनिया में सब से बड़ा झूठ बोलता है लेकिन कहता है कि झूठ दूसरे ने कहा । पहिली लड़ाई भी उसेने बराबरी स्वतन्त्रता और शान्ति के लिये लड़ी थी और यह दूसरी लड़ाई भी वह इसी शुभ मन्तव्य को लेकर लड़ रहा है । लेकिन इन लड़ाइय। का कारण हमेशा अंग्रेज रहा है । अंग्रेज का झूठ, अंग्रेज की सारी दुनियाँ को हड़प कर जाने की ख्वाहिश, दुनिया को गुलाम बनाने के इसके मन्सूबे, ये ही इन लड़ाइयों की वजह हैं ।"

उसी बीच में जंगले पर शका खड़ा हुआ दिखाई पड़ा । मौलाना ने दीवार में पतली सी नाली में से एक लिपटा हुआ कागज निकाला । इस कागज के बीच में एक पेंसिल लिपटी हुई थी । एक छोटा सा टुकड़ा फाड़ कर उसने उस पर उर्दू में कुछ लिखते हुए मुझसे पूछा, "तो बस, एक अखबार ही मँगाना है ? इसके अलावा तो और कुछ नहीं मँगाना है ?"

मैंने कहा, "नहीं, मुझे तो और किसी चीज की जरूरत नहीं ।"

वह पर्चा मोड़ कर इधर उधर देखते हुए मौलाना ने शक्के को दे दिया। शक्के ने जरा पीछे को देखा और फिर कमर में बँधे हुए कपड़े की तह में उसे रखकर चलता बना।

शक्के के चले जाने के बाद हम लोग थोड़ी देर तक और घूमते रहे। बूढ़ा मुसलमान मौलाना का खाना लेकर आ पहुँचा। मौलाना ने जँगले में से उससे खाना लेकर कहा। जाओ, हिन्दू मेस में जाकर कह देना कि बीच वाली कोठरी में जो है, वे आज इस वक्त खाना नहीं खायेंगे। मौलाना ने अपना तौलिया बिछा कर दस्तरख़ान लगा दिया। मैं और वह दोनों खाना खाने बैठे। बाहर का सन्तरी इधर उधर घूम रहा था। जब उसने मुझे मौलाना के साथ खाना खाते हुए देखा तो जँगले पर रुक गया और झाँक कर देखने लगा कि वास्तव में, मैं एक मुसलमान के साथ खाना खा रहा हूँ। इसके बाद वह बराबर घूम घूम कर खूब गौर से मुझे मौलाना के साथ खाना खाते हुए देखता रहा। उसके चेहरे से साफ नजर आता था कि वह मेरी इस बात पर कुछ नाराज है। वास्तव में पञ्जाब की पुलिस में सिपाहियों में धर्म का बहुत ख्याल रखा जाता है। वे लोग कभी भी मुसलमान के हाथ का छुआ नहीं खाते हैं; हिन्दू और मुसलमान में धर्म के मामले में काफी कट्टरता रहती है और धर्म छूत-छात और खाने पीने तक ही सीमित रहता है।

खाना खाने के बाद कुछ देर के लिये हम सोने को लेट गये। लेकिन, पता नहीं क्या कारण था कि नींद ज्यादा देर तक नहीं आई। अब टहलना भी ठीक नहीं लग रहा था। इसलिये, हम लोग खिड़की पर जाकर बैठ गये और कोतवाली में आने जाने वाले व्यक्तियों को देखने लगे। आने वाले व्यक्ति प्रायः सब इन्स्पेक्टर वगैरह ही होते थे। या अन्य आदमी जिनको सिपाही लोग पकड़ कर लाते या जिनका वे चालान करते।

सी० आई० डी० के इन्स्पेक्टर भी वहाँ, बहुत से आते। हमारी

खिड़की के सामने ही वे साइकिल रख कर कोतवाली में काम करने चले जाते। साइकिल रखते वक्त या तो वे हमसे कह जाते 'देखिये, मेरी साइकिल यहाँ रखी है। इसे कोई ले न जाय'। या वे प्रायः अपनी साइकिल पहरा देने वाले सिपाही की निगरानी में रख जाते। लेकिन पहरा देने वाला सिपाही बहुत अक्खड़ होता और वह इनकार कर देता, 'साहब मेरी ड्यूटी बदल रही है; मैं इसकी जिम्मेदारी नहीं ले सकता।'

इसी समय वहाँ से एक सी० आई० डी० निकला जो पहिले दिन जब मेरे घर पर पकड़ने के लिये पुलिस गई तो वह भी उसके साथ था। उस दिन की तरह आज भी वह कमीज और सलवार पहिने हुए था और सिर पर काली बालोंदार टोपी। मुझे खिड़की पर खड़ा देख कर वह रुक गया और बात चीत करने लगा। इतने में ही पहरे वाले सन्तरी ने उसे बातें करते देख कर उसकी तरफ लपकते हुए कहा, 'ओ! कौन है? क्या कर रहा है? चल हट यहाँ से।"

पहरे वाले से सी० आई० डी० वाला बोला, "कैसे बोलता है? जानता नहीं, हम सी० आई० डी० में हैं।"

"हाँ! होगा सी० आई० डी० में। तेरे क्या मुँह पर लिखा हुआ है। हमें सख्त हुक्म है कि किसी को यहाँ न खड़ा होने दें। हटो, यहाँ से।"

वहाँ से हटते हुए वह कहने लगा। 'अच्छा आप से फिर कभी बातें करूँगा। ये साले पुलिस वाले बड़े हूश होते हैं।'

इससे पहिले भी पुलिस वालों और सी० आई० डी० वालों की आपस की बातचीत से मुझे पता लग गया, कि सी० आई० डी० वाले और पुलिस वाले एक दूसरे की जड़ काटने पर रहते हैं।

वहाँ कई साइकिलों को रखा देख कर मौलाना ने पूछा, 'ये साइकिलें किसकी हैं?

मैंने कहा, "ये सी० आई० डी० के इन्स्पेक्टर रख गये हैं और देखने के लिये कह गये हैं।"

"अच्छा, आज तो इन्हें रखी रहने दो, कल से इनकी देखभाल ठीक ढँग से होगी।"

"क्यों? कल से क्या होगा?"

"मैं, अपने दोस्त को चिट्ठी लिख कर सुई मँगाता हूँ और कल से जितने लोग साइकिल रख कर जाया करेंगे सबमें पङ्क्चर किया जायगा। ये दूसरों को बड़ा परेशान करते हैं; इन्हें भी थोड़ा परेशान करना चाहिये।" अपने कहने के अनुसार उसने शाम को शक्के को एक पर्चा लिख कर दे भी दिया, जिसमें उसने अपने दोस्त का एक सुई भेजने के लिये लिखा था।

बाकी दिन बड़ी मुश्किल से कट पाया। शाम को मौलाना ने अपने यहाँ से खाना लाने वाले से मना कर दिया। जब मेरी रोटी और तरकारियाँ आई तो उसी में से दोनों ने खाया। जो पैसे इस तरह से बचाये थे उनकी दही मँगा ली थी। हम लोग जब खाना खा रहे थे तो पहरे वाला सिपाही फिर जँगले पर खड़ा होकर बड़े गौर से हमें देखता रहा। यह सिपाही दूसरा था। शायद सुबह वाले सिपाही ने इससे कह दिया था कि मैं मुसलमान के साथ खाना खाता हूँ।

उस रात्री को जब टहलने के बाद खिड़की पर आपस में बातचीत करने बैठे तो कुछ मन नहीं लगा। मेरे दिल से अब सी० आई० डी० वालों का ख्याल बिलकुल निकल गया था। श्यामलाल से थोड़ी देर तक बातें होती रहीं। पहिले ही दिन की बातचीत में प्रायः सब बातें खत्म होगई थीं। एक दो बात, जो दिन भर में उसने शाम को करने के लिये सोची थी, वह भी खत्म होगई। दूसरी कोठरी में जो महाशय बैठे थे वे बातचीत ज़्यादा नहीं कर पाते थे। जब बैठे बैठे तबियत उकताने लगी तो कोठरी में टहलना शुरू कर दिया। उस दिन रात में हम लोग जल्दी सो गये।

दूसरे दिन सुबह जिस सिपाही ने बाहर निकाला वह हिन्दू था। उसने मुझे गत दिवस मुसलमान के साथ खाना खाते हुए देखा था।

उसका व्यवहार बड़ा रूखा था। वह अपने साथियों से मेरे बारे में कह रहा था, "ये हैं कांग्रेस वाले। इनका भी कोई ईमान है। कल यह मुसलमान के साथ खाना खा रहा था।" किन्तु, उसके विचार अभी तक मेरी तरफ से परे पक नहीं पाये थे। यह साफ़ जाहिर हो गया था कि हिन्दू सिपाही मुझसे नाराज़ हो गये हैं।

सुबह के नित्यकर्मों से निवृत होकर हम लोग कोठरी में टहलने लगे। मौलाना से भिन्न भिन्न विषयों पर बहुत सी बातें होती रहीं। मौलाना वहाँ के अन्य कार्यकर्त्ताओं के व्यवहार की बुराई कर रहा था। वह वास्तव में अफ़सोस इस बातका कर रहा था कि कुछ कर नहीं पाया और पकड़ा गया। मैंने देखा, उसके हाथ के नाखून बहुत ज़्यादा बढ़ गये हैं। मैंने पूछा, 'मौलाना ये नाखून कबसे नहीं कटवाये?'

वह बोला, 'यहाँ पर ये लोग नाई को भी नहीं आने देते। जबसे आया हूँ तबसे नाखून नहीं कट पाये हैं। हम लोग टहल ही रहे थे कि दरवाज़े पर शक्का दिखाई पड़ा। वह अपनी मश्क लिए हुए खड़ा था जैसे वह पानी देने आया हो। मौलाना अपना टोंटीदार लोटा लेकर दरवाज़े पर गया। शक्का लोटे में पानी डालने लगा और इसी बीच में उसने अपनी कमर में बँधे कपड़े में से अख़बार और एक पत्र निकाल कर मौलाना को दे दिया। अख़बार मौलाना ने मुझे दे दिया। वह जल्दी से अपना पत्र पढ़कर खिड़की पर जा बैठा। उसके पत्र में एक कोने में सुई भी लगी हुई थी। सुई निकालकर मुझे दिखाते हुए वह बोला, 'लो, यह सुई आ गई। अब इनकी साइकिलों की देख भाल ठीक ढंग से होगी।

मैं दीवार से अखबार को चिपटाकर बिलकुल सट कर खड़ा होकर पढ़ने लगा। मौलाना से यह तय हो गया था कि अगर कोई आने वाला होगा तो वह खाँस देगा और अखबार को नीचे पड़े कम्बलों में फ़ौरन छिपा दिया जायगा। मौलाना से पहले बातचीत

होगई थी कि अगर इन लोगों ने अख़बार पढ़ते हुए पकड़ ही लिया तो किसी सी० आई० डी० वाले का नाम बता दिया जायगा। वास्तव में सी० आई० डी० वालों से कड़ी नफ़रत होगई थी।

कई दिन से अखबार नहीं पढ़ा था और उस कोठरी में लगातार बंद रहने के कारण तबीयत बहुत ऊब चुकी थी। अख़बार पढ़ने में बड़ा मन लग रहा था। मौलाना खिड़की पर बैठा हुआ उकता रहा था। जब वह बहुत उकता गया तो उसने धीरे से कहा, "अब खत्म करो; अब दोपहरी में पढ़ना। ज्यादा देर तक इस तरह से खड़ा रहना ठीक नहीं है; इसमें शक हो जाने का डर है।" मैं मौलाना का मतलब समझ गया।

खिड़की के ऊपर एक ६ इंच का चौकोर जंगला था जो रोशनदान का काम करता था। इसी में मैंने अपनी सिगरेट, दिया सलाई और बीड़ियाँ रख दी थीं। पहिले दिन मैंने सिर्फ दो सिगरेट पी थीं। एक ही सिगरट को थोड़ा सा पीकर बुझा कर रख लेता था और फिर जब तबीयत करती तो उसी को जलाकर पीता था। इस प्रकार एक एक सिगरेट को मैंने तीन तीन बार पिया था। एक सिगरेट सुलगाते हुए मैंने मौलाना को अख़बार की खबरें बतानी शुरू कीं। खबरें सब बता चुकने पर भी मौलाना को कुछ तसल्ली नहीं हुई वह और अधिक खबरें जानना चाहता था। मैंने कहा, "दोपहर में अखबार पढ़कर मैं फिर से सिलसिलेवार सब ख़बरें तुम्हें सुनाऊँगा।"

दोपहर को फिर मैंने अपने खाना लाने वाले से खाना लाने के लिये मना कर दिया। जब मौलाना का खाना आया तो हम दोनों साथ बैठकर खाना खाने लगे। खाना शुरू करते ही मैंने देखा कि बाहर वाला संतरी बरामदे में घूमते हुए जब हमारी कोठरी के सामने से गुजरता तो उसकी चाल धीमी हो जाती और वह बड़े गौर से मुझे और मौलाना को खाना खाते हुए देखता हुआ चलता। एक

दो बार वह रुक भी गया। लेकिन, जिससे हमारा ध्यान उधर ज़्यादा आकर्षित न हो, वह मेरे देखते ही वहाँ से टहल जाता। मैं जानता था कि ये सिपाही मेरे इस कार्य पर मुझसे बहुत नाराज़ हैं।

आज भी कोई मुझे बुलाने नहीं आया। कपड़ों के न होने की वजह से बड़ी दिक्कत हो रही थी। मौलाना का कुछ ठीक नहीं था कि किस दिन वे लोग उसे यहाँ से ले जायँ। वहाँ के कम्बल और फट्टों का ख्याल आते ही सारे शरीर में एक ठंडी कंपकंपी सी आ जाती थी। खाना खाने के बाद हम लोग थोड़ी सी नींद लेने के लिये सो गये। थोड़ी ही देर सोये होंगे कि देखते हैं कि दरवाज़े पर कुछ लोग जमा हैं और जमादार कोठरी का दरवाजा खोल रहा है। उठकर देखा तो मालूम हुआ कि सिपाही एक आदमी को पकड़े हुए हैं। दरवाज़ा खोलने के बाद उस आदमी को भी उन्होंने उसी कोठरी में बंद कर दिया।

जमादार के चले जाने के बाद पहरे का सिपाही आया। उसने पहिले ताले को बजाकर देखा और फिर झांक कर बड़े गौर से नये आये हुए व्यक्ति को देखा। वह आदमी आकर दीवार के सहारे उकड़ूँ बैठ गया। वह एक कम्बल ओढ़े हुए था। उसका रंग रूप ऐसा था जिससे मालूम पड़ता था कि न तो वह पंजाबी है और न यू० पी० का ही।

मैंने अपनी बुझी हुई सिगरेट को सिरहाने से निकालकर जलाया। मुझे सिगरेट पीता हुआ देखकर वह बोला, 'एक सिगरेट हमें भी दे दीजिये!" मौलाना ने मुझसे कहा, 'इसे एक बीड़ी दे दो।" बीड़ी का बण्डल आज जंगले से उतार कर दीवार में नाली के सुराख में रख दिया था। वहाँ से बंडल निकाल कर एक बीड़ी उसे देते हुए मैंने कहा, "देख, इधर दीवार के सहारे छिप कर पी। अगर सिपाही ने देख लिया तो तुम पर तो मार पड़ेगी ही, हमारी सिगरेट बीड़ियाँ भी सब चली जायेंगी।"

अपनी बीड़ी खत्म करने के बाद वह फिर आकर हमारे बिस्तर के पास अपना कम्बल जमीन पर रखकर बैठ गया। उसने बड़ी नम्र भाषा में हम लोगों से पूछा, 'आप लोग कैसे पकड़े गये हैं?" मेरे बोलने से पहिले ही मौलाना ने जवाब दिया, 'हम लोग कांग्रेस में हैं। तू कैसे पकड़ कर आया?"

मौलाना के प्रश्न करने पर उसने अपना सिर नीचे को झुका लिया। उसके बाद वह बोला, 'अजी, मुझे तो ये जबरदस्ती पकड़ कर लाये हैं। मैं आज मंदिर में पूजा करने गया था। वहाँ से जैसे पूजा करके बाहर निकला वहाँ के पुजारियों ने देवता का छत्र उतार कर मुझे पकड़ लिया, पीटा और कहने लगे कि यह चोर है, और पुलिस वालों के हवाले कर दिया।"

मैंने पूछा, 'तुम कहाँ के रहने वाले हो?"

वह बोला, 'साहब मैं परदेसी आदमी हूँ। मैं तो सिंध का रहने वाला हूँ।"

मौलाना ने प्रश्न किया, "यहाँ इतनी दूर आप दिल्ली में क्या करने आये थे?"

"मैं यहाँ तो घूमने चला आया था।"

मौलाना ने उसकी बातों पर अविश्वास करते हु पूछा, 'अच्छा; बड़ी दूर आप घूमने आये। जब तुम्हें पकड़ा तब तुम्हारे पास कितने रुपये थे?"

'मेरे पास, जी; उस वक्त सवा छः रुपये थे। वे भी पुलिस वालों ने ले लिये। पता नहीं देंगे या नहीं। मैं तो बड़ा गरीब आदमी हूँ।"

मौलाना ने फिर पूछा, 'अच्छा! यहाँ से तुम्हारे घर का किराया कितना लगता है?"

'यहाँ से तीसरे दर्जे का किराया, जी, करीब ३०) लगता है।"

मौलाना ने मेरी तरफ देखकर व्यंग पूर्वक कहा, 'देखा, यह कितना झूठा है। जनाब यहाँ सैर करने आये थे और पास में

लौटने तक का किराया नहीं था। यह चोर है जी। इसने मंदिर में देवता का सोने का छत्र चुराया होगा और मंदिर में यह पूजा के बहाने घुसा होगा। उसी में पकड़ा गया है।"

वह मौलाना की बातों का प्रतिवाद करता रहा लेकिन उसके बात कहने के ढंग से यह साफ़ हो गया था कि वह झूठा है। उसने चोरी ज़रूर की थी और उसी में पकड़ा गया था। इसके बाद दिन भर वह वहीं पर अपना कम्बल सिरके नीचे लगाकर सोगया।

उससे बातें करने के बाद नींद बिलकुल चली गई थी। उठकर हम लोग खिड़की पर आ बैठे और कोतवाली में आने जाने वाले व्यक्तियों को देखने लगे। उसी समय एक सी० आई० डी० का दरोगा साइकिल लेकर वहाँ आया। हम लोगों को खिड़की पर बैठा हुआ देखकर उसने साइकिल वहाँ रख दी और बोला, "ज़रा मैं ऊपर जा रहा हूँ जी, मेरी साइकिल देखते रहना।"

मैंने कहा, "आप बेफिक्र रहिए। यहाँ से आपकी साइकिल कोई भी नहीं ले जायगा।" इसके बाद मैंने मौलाना से कहा, "मौलाना लो एक मूजी तो आ फँसा।" मौलाना ने ढूँढकर अपनी सुई निकाल कर मुझे दे दी। इसके बाद वह जंगले के पास खड़ा होकर देखने लगा कि कोई हम लोगों की तरफ़ तो नहीं देख रहा है। मैंने फिर उस साइकिल के अगले पहिये में दो पंक्चर कर दिए। मौलाना ने पूछा, "कितने किए।"

मैंने कहा, "दो"

इसके बाद थोड़ा घूम घाम कर मौलाना खिड़की पर आ बैठा। उसे शायद दो पंक्चर से तसल्ली नहीं हुई थी इसलिये उसने पिछले पहिये में दो और कर दिए।

थोड़ी देर बाद एक पुलिस का दरोगा आया। उसने वहाँ पर एक साइकिल रखी देखी तो वह भी अपनी साइकिल वहाँ रख गया। उसने अपनी साइकिल में ताला भी लगा दिया था। जब वह चला

गया तो मैं अबकी बार यह देखने के लिये खड़ा हो गया कि संतरी या कोई दूसरा व्यक्ति तो हम लोगों की तरफ़ नहीं देख रहा है। मौलाना ने उस साइकिल में भी पंकचर कर दिये। उस दिन एक आदमी और साइकिल रख गया था उसकी साइकिल में भी हम लोगों ने पंकचर किये।

सबसे पहिले पुलिस का दरोगा अपनी साइकिल लेने आया, ताला खोलकर जब वह चलने लगा तो उसने देखा कि उसकी साइकिल की हवा निकल गई है। वह ज़रा रुका, और गौर से उसने पहिये को देखा, लेकिन उसमें किसी तरह का कोई भी निशान नहीं था। जब वह चला गया तो मौलाना बोला, "चलो, बेटा आज पांच छः मील पैदल जाओ।"

फिर सी० आई० डी० का इन्सपेक्टर आया। वह अपनी साइकिल उठाकर बरामदे में चला तो हवा निकल जाने की वजह से साइकिल खड़खड़ की आवाज़ कर रही थी। मौलाना मुँह पर हाथ धरे हँस रहा था। मुझे भी हँसी आ रही थी। साइकिल की खड़खड़ को देखकर वह रुका, हवा भरने की टोंटी को उसने हाथ से घुमाकर देखा, वह ठीक थी। वह साइकिल को गौर से देखता हुआ वहाँ से चला गया। इसी प्रकार तीसरा व्यक्ति भी जब थोड़ी दूर बरामदे में चला गया तब जाकर उसे पता चला कि उसकी साइकिल की हवा गायब है।

सब लोगों के चले जाने के बाद हम लोग फिर खिड़की पर आकर बैठ गये। मैंने कहा, 'इन्हें यह बात तो दस दिन तक भी मालूम नहीं होगी कि उनकी साइकिल की हवा कैसे निकली।"

मौलाना ने कहा, "सी० आई० डी० वाले हैं लेकिन इसका पता नहीं लगा सकते।"

मैंने पूछा, "मौलाना, एक पंचर के जोड़ने का आजकल क्या लगता है?"

वह बोला, "दो आने पैसे"

मैंने कहा, "कितने पंचर आज हुए।" हिसाब लगाया गया। वह बोला "देखो पहिली वाली साइकिल में चार पंकचर। दूसरी वाली में छः, तीसरी वाली में पांच। सब मिलाकर १५ पंकचर हुए। दो आने के हिसाब से इनकी कीमत १ रु० १४ आने हुए, समझे आप; आज आपने १ रु० १४ आने पैसे कमा लिये।"

मौलाना ने खूब हिसाब लगाया था। हिसाब लगाने के बाद हम लोग खूब हँसे। वह देवता का चोर भी जाग गया था। उसने भी हमारी बातें सुन ली थीं। वह भी बैठा हुआ बेवकूफ़ों की तरह दांत निकाल कर हँस रहा था।

उस दिन शाम को मौलाना ने अपने यहाँ खाना मना कर दिया। हिन्दू मेस का नौकर खाना देकर चला गया। मैंने और मौलाना ने साथ बैठकर खाना खाया। वह सिन्धी भी अलग बैठा हुआ खाना खा रहा था। खाना खाने के बाद मैंने एक बीड़ी उसको निकाल कर दी। हवालात में बीड़ी पाकर वह बहुत खुश होता था। बीड़ी देते हुये मैंने उससे कहा, "देखो जब तक तुम यहाँ रहोगे तुम्हें चार बीड़ियाँ रोज दिया करेंगे। एक बीड़ी सुबह पाखाना जाने से पहिले, एक दोपहर को खाना खाने के बाद, एक शाम को और एक रात को। बस इसी में तुम्हें काम चलाना होगा।" उसने सिर हिला कर मेरे इस प्रस्ताव को मान लिया।

रात को लगभग आठ बजे के करीब जब हम लोग खिड़की पर बैठे हुए थे तो हमने देखा कि वह सिंधी कमरे में कुछ परेशान सा घूम रहा है। मैंने पूछा, "क्यों, क्या बात है?"

वह बोला, "साहब! मुझे तो पाखाना लग रहा है।"

मौलाना ने मेरी तरफ़ देखा और बोला, यार, यह भी साला बड़ा गन्दा आदमी है। शाम को तो इसने कहा नहीं। अब रात को ये लोग

हरगिज भी बाहर नहीं निकालेंगे। अच्छा देखो पूछते हैं। अगर राज़ी हो जायँ तो अच्छा है।"

मौलाना ने संतरी को 'संतरी साहब' के नाम से पुकार कर बुलाया। उससे कहा कि किसी तरह से वह बाहर निकाल कर उसे ले जाय, लेकिन उसने साफ इनकार करते हुये कहा, "आप लोग कैसी बात करते हैं। यह हवालात है। रात को कैदी को हम कैसे बाहर निकाल सकते हैं? अगर भाग गया तो कौन जिम्मेदार होगा।"

उस कोठरी में दरवाजे के पास कोने में एक टूटी हुई लोहे की बाल्टी रखी हुई थी। रात-दिनमें सुबह, को छोड़ कर, जब पेशाब जाना होता तो इसी में करना पड़ता था। और वह पेशाब प्रायः कोठरी में दरवाजे के पास को वह निकलता था। कभी कभी वहाँ पर बड़ी बदबू फैलती थी। उसका कोई चारा नहीं था लेकिन आज एक दूसरी हो परेशानी पैदा हो गई थी।

सिंधी को शक्ल से मालूम होता था कि वास्तव में वह काफी परेशान है। मौलाना ने उससे कहा, "अच्छा देख एक काम कर। ये कम्बल के टुकड़े यहाँ पर पड़े हुए हैं। इनमें से एक टुकड़ा ले ले। उस पर पाखाना फिर कर उसको लपेट कर इस बाल्टी में डाल देना।

हम लोग खिड़की पर बैठ गये और बाहर को देखने लगे उसने मौलाना के कहने के अनुसार किया, लेकिन उस कोठरी में बड़ी बदबू सी फैल गई थी। उस दिन रात को बड़ी मुश्किल से नींद आई।

सुबह को जब नियत कर्मों से निवृत्त होकर लौटे तो थोड़ी देर बाद देखते क्या हैं कि लाल दाढ़ी वाला जमादार दरवाजे पर खड़ा हुआ है। उसके साथ में कोठरी में झाड़ू देने वाला भङ्गी भी था। जमादार ने जँगले में खड़े होकर, अगुली से इशारा करते हुए उस सिन्धी से कहा, 'क्यों बे साले, तूने यह क्या हरामीपन किया? मारे डण्डों के तेरा दिमाग ठीक कर दूँगा।" वह सिन्धी चुपचाप नीचा सिर किये हुए वहाँ बैठा रहा।

मौलाना ने पूछा, "क्या बात है, जमादार साहब?"

वह दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए गुस्से में बोला। 'बात क्या है? यह साला चोर है और अफीमची है। कोठरी खुलने से पहिले मुझे मालूम नहीं हुआ, नहीं तो, इस हरामजादे से कम्बल साफ करवाता।" इसी तरह दो तीन और माँ बहिन की गालियाँ उसको देकर वह वहाँ से चला गया। बात हम लोगों की समझ में आ गई थी। रात को कम्बल पर पाखाना फिर कर जो इसने बाल्टी में डाल दिया था, उसी का किस्सा था।

करीब ६ बजे के शङ्का अखबार लेकर लौट आया। मैं अखबार पढ़ने लगा मौलाना खड़ा होकर देखने लगा कि कोई बाहर देखता तो नहीं है। आज कई दिन के बाद धूप निकली थी। कोठरी में भी काफी उजाला था मौलाना ने कहा, 'आज इन फट्टों को धूप में डलवाये देते हैं। इनके कुछ खटमल तो मर जायेंगे, नहीं तो ये रात को बड़ा काटते हैं।'

भङ्गी से कह कर वे फट्टे बाहर डलवा दिये। खाना आने में अभी देर थी। इसलिये हम लोग जाकर बिस्तरे पर लेट गये। वह सिन्धी भी पास में बैठा हुआ था। उसने अपने पैरों में कम्बलों की ऊन निकाल कर गेटिसों की तरह कस कर बाँध ली थी। मौलाना ने पूछा, 'यह तुमने क्यों बाँध लिया है?"

वह बोला, 'मुझे अफीम खाने को आदत है। आज सारे बदन में दर्द हो रहा है।"

मौलाना ने कहा, 'आज तो तुम बच गये, अगर अब तुमने ऐसी हरकत की तो बड़ी मार पड़ेगी।"

उसने हँस कर अपना मुँह नीचे को कर लिया। थोड़ी देर बाद वह बोला 'आप तो सब चीजें यहाँ मँगवा लेते हैं हमारे लिये भी एक चीज मँगवा दीजिये।'

मैंने पूछा, "क्या मंगवाना है तुझे?"

वह बोला, "हमें थोड़ी सी अफीम मंगवा दीजिये !"

मौलाना ने उससे कहा, "कितने की मंगवायेगा ?"

"बस दो आने की काफ़ी होगी।"

मौलाना ने कहा, "ला, दो आने पैसे दे।"

अपना कम्बल दिखाते हुए वह बोला, "पैसे तो मेरे पास नहीं हैं, दो आने में यह कम्बल ले लीजिये।" उसका कम्बल पुराना था लेकिन फिर भी आठ दस रुपये का ज़रूर था।

मैंने कहा, "दो आने में तो तुम्हारा कम्बल मंहगा है।"

वह बोला, "तो एक आने में ही ले लीजिये।"

हमको बड़ी जोर की हंसी आगई। मौलाना ने उसे डांटते हुये कहा, "यहाँ अफ़ीम, वफ़ीम नहीं आ सकती। तू क्या हमें भी मरवायेगा ?"

वह अपना कम्बल फिर सिर के नीचे लगाकर लेट गया।

खाना खा कर हम लोग भी थोड़ी देर के लिये सो गये थे। करीब तीन बजे उठकर मैं खिड़की पर जा बैठा। वहां देखा की कई साइकिलें रखी हुई हैं। थोड़ी देर तक इन्तज़ार किया लेकिन मौलाना उठने का नाम ही नहीं लेता था। मैंने आख़िर को जाकर मौलाना को जगाया। उसने खोज खाज कर अपनी सुई निकाली और उन साइकिलों की देख भाल का काम शुरू होगया।

इधर हम लोग तो खिड़की पर बैठे हुये बात चीत कर रहे थे। उधर कोठरी की तरफ जो देखा तो वह सिंधी बिस्तर के सिरहाने से बीड़ियां चुराकर पी रहा था। मैंने उसके पास जाकर कहा, "हमने तुझे पहिले ही बीड़ी देदी थी, फिर तूने चोरी क्यों की ? अगर तेरा बहुत ही जी चाह रहा था तो मांग लेता, कोई इनकार तो कर नहीं देता ?" लेकिन उसने इसका कोई जवाब नहीं दिया।

खिड़की पर बैठे बैठे मेरी निगाह फट्टों पर गई। उनपर खटमल इतनी अधिक संख्या में चल रहे थे कि कभी कभी एक जगह में इतने

इकट्ठे हो जाते थे कि उनका बड़ा दाग़ सा दीखने लगता था, मैंने मौलाना से कहा, "मौलाना देखो, इन फट्टों में कितने खटमल हैं ?"

मौलाना दौड़कर जंगले पर आया। कुछ खटमल कोठरी की तरफ़ आ रहे थे। उनको पैर से मारते हुए बोला, "इन फट्टों में तो इतने खटमल हैं, जितने हिन्दुस्तान में अंग्रेज। अंग्रेज सब मिलकर चालीस करोड़ का खून चूसते हैं, और ये सब मिलकर एक अकेले का। फ़र्क इतना ही है।"

उसदिन शाम को वे लोग सिंधी को बाहर निकाल ले गए थे। उसको वे लोग जेल ले गए। वास्तव में हवालात का कायदा यह है कि इनमें कैदी को ज्यादा से ज्यादा २४ घंटे रखा जा सकता है। जो लोग भयंकर जुर्म में पकड़कर लाये जाते थे, उनको डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट से इजाज़त ले कर, ज़्यादा से ज़्यादा पंद्रह दिन तक रखा जाता था। इन दिनों में हवालात की तकलीफ़ों के कारण बहुत खतरनाक कैदी भी बहुत से भेद बता दिया करते थे। इसलिए प्रायः कैदियों को २४ घंटे से पहिले ही जेल भेज दिया जाता था। अगर किसी को डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट से इजाजत लेकर रखते थे तो उसको रखने की सात दिन से ज्यादा की इजाजत नहीं मिलती थी। लेकिन राजनैतिक कैदियों के लिए डी० आई० आर० की दफा १२६ बना दी गई थी, और इसमें संशोधन करके यह कर दिया गया था कि बिना किसी से पूछे हुए, सी० आई० डी० वाले, स्वयं अपनी मर्जी से, २ महीने तक, इन हवालातों में राजनैतिक कैदियों को, रख सकते थे। और अगर दो महीने, उनको तकलीफ़ देकर भेद पूछने के लिए काफी न हो तो डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को खबर देकर १५ दिन की और बढ़ा सकते थे। इसके अलावा ऐसा भी करते थे कि दफ़ा १२६ के २ महीने हो जाने के बाद, फिर से लगा देते थे। इस तरह तीन तीन महीने तक हवालात में लोगों को रक्खा गया।

उस दिन संध्या को एक दूसरा आदमी पकड़ कर आगया फिर

हम लोग पूरे तीन होगये। वह एक जवान लड़का था। उसका शरीर खूब गठा हुआ था। उसकी उम्र लगभग २६ साल की होगी। कोठरी में आने के बाद वह जाकर खिड़की पर खड़ा हो गया। थोड़ी देर तक घूमता रहा इसके बाद वह फर्श पर आकर बैठ गया।

हम लोग सोच रहे थे कि उससे पूछें कि तुमको क्यों पकड़ कर लाए, लेकिन प्रायः ऐसा होता है कि, अगर किसी आदमी से अचानक प्रश्न पूछो तो उसे कुछ शक होजाता है। इसलिए बहुत इच्छा होते हुए भी हमने उससे कुछ नहीं पूछा। उसने ही स्वयं हमसे पूछा, "आप लोगों को क्यों पकड़ा है?"

मौलाना ने फ़ौरन जवाब दिया, "हम लोग कांग्रेस में हैं।" उसके बाद मौलाना ने उससे पूछा, "तुम्हें क्यों पकड़ा है?"

वह ज़रा खामोश होगया उसके बाद वह बोला, "आप लोग कांग्रेस में हैं। किसी तरह मुझे बचाइये, मैं क्या करूँ? बड़ी मुश्किल में फंस गया हूँ।" इतना कह कर वह चुप हो गया।

मैंने उससे कहा, ,,देखो, घबराओ नहीं। अगर तुम हम पर यकीन करते हो तो ठीक ठीक बताओ। जितनी हो सकेगी उतनी मदद तुम्हारी करेंगे। वैसे, तुम देख रहे हो इस वक्त हम लोग खुद मजबूर हैं।"

वह बोला, "अजी मेरे पास एक रिवालवर था। अभी दो चार दिन हुये मैंने खरीदी थी। क्या बताऊँ, एक सी० आई० डी० वाला मेरे साथ था। असल में उसी ने खरीदवाई थी और उसी ने मुझे पकड़ा दिया।"

मुझे कुछ शक हुआ कि शायद इसका किसी पर शक हो गया है। या यह बात कुछ गलत कह रहा है। मैंने पूछा, "तुमको कैसे मालूम कि वह सी० आई० डी० वाला था। अगर वह सी० आई० डी० वाला था, तो तुम पहिले से ही होशियार क्यों नहीं हो गये थे?"

वह कहने लगा, "मुझे पहिले शक था, लेकिन, विश्वास नहीं

था। कल शाम को एक साथी ने मुझे उसके साथ देखा तो वह बोला, 'तुम इसके साथ कैसे हो? यह तो सी० आई० डी० है।' मैंने उसकी बात का विश्वास नहीं किया। मैंने उससे कहा कि यह तो मेरे साथ बहुत दिनों से है। इस पर उसने मुझे बताया कि तुम चाहे मानो या न मानो यह सी० आई० डी० वाला है। इसने पहले भी एक लड़के को पकड़वाया था। उस लड़के के साथ यह इस तरह मिला रहा जैसे यह भी आन्दोलन में काम कर रहा हो और उस लड़के ने जब मसजिद से कोतवाली में बम फेंका तो कोई नहीं जानता था कि किसने ऐसा किया। यही, वह आदमी था जो इस बात को जानता था। उसके फौरन बाद ही वह लड़का पकड़ लिया गया। उसकी बातों को सुनकर कुछ मुझको डर तो लगने लगा लेकिन मैंने सोचा कि अभी इससे झगड़ा करना ठीक नहीं। फिर इसने ही तो खुद मुझे इसका सौदा करवाया था। इतनी जल्दी यह मुझे पकड़वायेगा नहीं। इसी सोच विचार में मैं पड़ा हुआ था। यह भी सोच रहा था कि इस रिवालवर को कहाँ ले जाकर रक्खूँ या क्या करूँ? बस! पुलिस आ पहुँची। जहाँ रिवाल्वर रखी हुई थी, वहाँ से भी उन्होंने खोज निकाली। मुझे उन्होंने आते ही पकड़ लिया।"

मैंने पूछा, "अच्छा पकड़े जाने के बाद पुलिसवालों ने जब तुमसे पूछा होगा कि तुमने यह कहाँ से लिया, क्यों लिया; तो तुमने उनको क्या जवाब दिया?"

"मैंने तो उनसे उस सी० आई० डी० वाले का नाम ही बता दिया था। और यह सच भी है। मुझसे वे पूछने लगे कि क्यों लिया? तो इसके जवाब में मैंने यही कहा कि मेरा घर राजपूताने में है। रास्ते में बहुत भयानक जंगल पड़ता है। कभी-कभी डाकू भी मिल जाते हैं। वैसे जंगली जानवरों का तो हमेशा ही डर रहता है। इसीलिये मैंने खरीद लि था कि होली में घर जाऊँगा तो साथ में ले जाऊँगा।"

मैंने कहा, "हाँ, यह तो तुमने ठीक कहा। अच्छा, एक बात यह बताओ, तुमने लिया क्यों था ?"

वह फिर चुप हो गया। मुझे लगा कि यह सवाल पूछना ठीक नहीं था। इससे पूछने से मेरा तो कोई फ़ायदा नहीं। यह भी शायद बताने में हिचके और ठीक भी है। इसे बताना भी नहीं चाहिये। लेकिन वह बोला; "आप लोगों पर तो मुझे कुछ यकीन हो गया है; इसलिये बताये देता हूँ, नहीं तो, किसी को नहीं बताया है। मैं भी इसी आंदोलन में काम करता था। कुछ यूनिवर्सिटी के लड़के हैं। उन्हीं के साथ में हूँ। उन्होंने मुझसे पहिले से कह रखा था। इसीलिये मैंने भी ले लिया।"

उसकी बातें सुनकर ज़रा मेरे भी कान खड़े हो गए। यह शख्स ज़रूर कुछ लोगों को जानता होगा। मुझे यकायक राजाराम की याद आ गई। वह भी इसी तरह बहुत से लोगों को जानता था; पहिले बड़ी बहादुरी से बातें किया करता था। लेकिन बाद में उसने सब कुछ बता दिया। उससे हमारा कितना नुकसान हुआ, कितने साथी पकड़े गये! किसी तरह से इसे पक्का करना है। कहीं यह अपने किसी साथी का नाम न बता दे !

मैंने उससे कहा, "देखो, यह बात तुमने हमसे कही, यह भी ठीक नहीं किया। तुम हमको जानते नहीं थे। इसका कितना बुरा नतीजा हो सकता है; शायद तुमने सोचा भी नहीं होगा। लेकिन खैर, अब फिर कभी इसके बारे में तुम सोचना भी नहीं; कभी किसी से कहने की बात तो अलग रही। और देखो, एक बात तुमसे बताये देता हूँ। ये पुलिस वाले तुम्हें पहिले मारेंगे, डरायेंगे। उसके बाद तुमसे कहेंगे कि तुम सब बातें ठीक ठीक बता दो। तुम्हें छोड़ने का वादा करेंगे। इस ढंग से तुमसे बात करेंगे मानो असल में वे तुम्हारा भला चाहते हों, लेकिन ख़बरदार! अगर तुमने उन पर विश्वास कर लिया तो मारे जाओगे। तुम खुद अपने को त फँसा ही लोगे, उसके साथ थ

और भी तुम्हारे साथी फँस जायेंगे। तुम गद्दार कहलाओगे। सब तुम्हारा किया धरा मिट्टी में मिल जायगा। लोग तुम पर थूकेंगे। तुमसे नफ़रत करने लगेंगे। अगर तुम यही बातें कहोगे जो तुमने अभी कही हैं तो शायद तुमको वे लोग पीटें ज्यादा; लेकिन एक बात मैं तुमसे बताये देता हूँ, इसमें तुम्हारे छूट जाने का ज्यादा मौका है। और वैसे तुम खुद समझदार हो। आखिर को कुछ सोचकर ही तो तुमने कदम उठाया होगा।"

इसके बाद मौलाना भी उसको समझाता रहा। उसने भी उसे साहस दिलाने का प्रयत्न किया। हम लोग बातें कर ही रहे थे कि इतने में देखा कि दरवाजे पर तीन चार आदमी खड़े हुए हैं। साथ में जमादार भी दिखाई पड़ा। हम समझ गये कि आज किसी के जाने की बारी आ गई। उस लड़के का नाम लेकर पुकारते हुए इन्सपेक्टर ने उसे आने को कहा। मैंने धीरे से उससे कहा, 'जाओ! लेकिन देखो घबराना नहीं। बहादुरी से मुकाबला करना।' वह कुछ डर सा रहा था। कुछ अजीबसा—किंकर्त्तव्य विमूढ़ सा होगया था। उसको लेकर वे लोग चले गये।

मौलाना ने कहा, "आज इसको ज़रूर पीटेंगे।"

मैंने कहा, 'मौलाना, इसको समझाने की बहुत ज़रूरत है। इसे लगातार हमें साहस दिलाते रहना चाहिये, नहीं तो कमजोर पड़ने पर यह आफत ढहा सकता है।"

मौलाना ने कहा, आपकी आज की डोज़, आज के लिये काफी है। आज पीटने पर भी वह कुछ नहीं बतायेगा। लेकिन उसे तो रोज़ाना ही समझाना पड़ेगा।

खाना खाकर टहलने के बाद हम लोग जाकर खिड़की पर बैठ गये। सुबह पाखाना जाते समय श्यामलाल से मिलने का अवसर मिल गया था। पास से गुजरते हुए चुपके से मैंने उससे कह दिया था कि आज रात को तुम्हें ख़बरें सुनायेंगे। इसलिये वह जल्दी

अपने जंगले पर आकर मुझे आवाज देने लगा। ६ बजे के बाद मैंने उससे कहा, 'अरे भाई, श्यामलाल जी! आज दिन में एक सी० आई० डी० वाला आया था। वह लड़ाई की और आन्दोलन की बहुत सी अखबार की खबरें बता रहा था।" इसके बाद उस सी० आई० डी० वाले का हवाला देते हुए सारी खबरें सुनादीं।

लेकिन बात चीत करने में कुछ मन नहीं लग रहा था। सोच रहा था कि इस लड़के के साथ पता नहीं वे कैसा व्यवहार कर रहे होंगे। बिना पढ़े लिखे लोगों से तो ये लोग सीधे डंडे से ही बात करते हैं। उस लड़के का करुण चित्र आंखों के सामने आ गया। मैंने मौलाना से कहा, 'मौलाना, वह लड़का अभी तक आया नहीं?'

मौलाना ने कहा, 'अरे, ये हरामजादे यों आसानी से पिंड थोड़े ही छोड़ते हैं। पीट रहें होंगे, उसे।'

रात को करीब ग्यारह बजे उसको वे लोग वापस लाये। जैसे ही वह आया हम लोग अपने बिस्तरे पर जाकर बैठ गये। उसके मुंह पर उँगलियों के निशान पड़े हुए थे। वह ज़मीन पर बैठने लगा। मैंने उससे कहा "आओ, यहाँ बिस्तरे पर बैठ जाओ।"

वह धीरे से बिस्तरे पर खिसक कर बैठ गया। उसकी दशा देख कर हम लोग समझ गये कि इसको आज उन्होंने ख़ूब पीटा है। उससे पूछने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। आखिर, मैंने पूछा, "कहो क्या बहुत मारा? क्या-क्या पूछ रहे थे वे लोग?"

उसने जरा सा सिर उठाया और उसके बाद फिर नीचे झुका लिया, सिर झुकाये हुए ही वह कुछ भर्राई हुई धीमी आवाज़ में बोला, "जाते ही इन्सपेक्टर ने मुझ से पूछा कि यह रिवाल्वर तुम्हारे पास कहाँ से आया? मैंने उसे वही जवाब दिया जो कल दिया था। उस पर उसने मुझे चांटे और घूंसे मारना शुरू कर दिया। मेरे हाथ पीछे की ओर बँधे हुए थे।"

इसके बाद माँ बहिन की गाली देते हुए वह सिपाहियों से बोला, "इसकी टांगें चौड़ी कर, इसे एक घँटे तक खड़ा रहने दो।" उन लोगों ने जबरदस्ती पकड़कर मुझे दीवार की तरफ़ को मुँह करके खड़ा कर दिया और बूटों की ठोकर मार-मार कर मेरी टांग चौड़ी कर दी। थोड़ी ही देर बाद बहुत ज़ोर का दर्द होने लगा। मैंने ज़रा टांग हटाई; बस, इसी पर उसने मेरे चूतड़ों पर ज़ोर से बूट की ठोकर मार कर कहा, 'साले खड़ा नहीं रहेगा? तेरी जान निकाल लूँगा। इस तरह करीब आधे घंटे तक, जब तक मुझे होश रहा यही होता रहा। मेरा पैर जब जरा सा भी हिलता तभी या तो दीवार पर मेरा सिर मार दिया जाता था; जिससे नाक में चोट पहुँचती या फिर चूतड़ों पर लात मार दी जाती थी। उसके बाद तो मैं बेहोश होकर गिर पड़ा। जब मुझे होश आया तो फिर उस दारोगा ने वही सवाल पूछा। मैं खामोश रहा। इस पर उसने गाली देते हुए कहा, "क्यों बे तेरे मुँह में क्या जबान नहीं है? एक घँटे से पूछ रहा हूँ और "बताता ही नहीं।" मैंने फिर वही बात दोहराते हुए कहा कि मैंने साहब आपको ठीक बात बता दी। उसी से मैंने खरीदी थी। यह सुनते ही फिर उसने दो तीन हाथ मेरे मुँह पर मारे। इधर वह मारता था तो उधर मुँह फिर जाता था। और उधर मारता था तो इधर मुँह फिर जाता था। इसके बाद वह बोला "इसे ले जाओ बंद करदो। कल से फिर इसकी ख़बर लूंगा।" इतना कहकर वह चुप हो गया।

उसकी बातों को सुनकर सारे शरीर में एक बिजली सी दौड़ गई। उफ़! कैसी बात है। हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्तानी के साथ कैसा व्यवहार कर रहा है और हिन्दुस्तान के ऐसे गाढ़े वक़्त में? क्या कभी इसका अत होगा? क्या रोटियों के लिये आदमी इतना बदल जाता है? इसको कैसे ठीक किया जा सकता है? उसकी बातों के बाद उसे कैसे सांत्वना दी जाय, कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

मैंने धीमी सी आवाज़ में कहा, "खैर, आज उनका मौका है; जो जी में आये वे करें। एक दिन हमारा भी मौका आयेगा; उस दिन देखा जायगा।" उसकी कमर पर हाथ रखकर मैंने कहा, 'तुमने बहुत बहादुरी का काम किया। हम इससे ज़्यादा तुमसे क्या कहें! हम सब को अभी तो सब इससे भी ज़्यादा तकलीफें सहनी हैं। अच्छा, तुम सो जाओ।"

मौलाना ने अपना गद्दा उसे दे दिया। उसके पास एक दोहर रह गई थी। मैंने मौलाना से कहा, "यह चादर तुम ले लो।" मौलाना ने लेने से इनकार कर दिया। रात कोलगभग १ बज गया था। उसके बाद सब लोग सो गये। रात को एक दो बार आँखें खुलीं तो उसके कराहने की आवाज़ सुनायी पड़ी। कुछ समझ में नहीं आता था, क्या किया जाय। बड़ी बेबसी की हालत थी।

× × ×

दूसरे दिन हम लोगों ने उस लड़के के साथ बातचीत की। वह भी कहता रहा, "जब वे लोग मुझे पीट रहे थे उस समय मुझे बड़ा गुस्सा आ रहा था। लेकिन, मेरे हाथ बंधे हुये थे, बिलकुल बेबस था वर्ना उनमें से एक आध को तो पकड़ लेता और जब तक उसकी जान न ले लेता तब तक न छोड़ता। खैर, कभी तो मौका मिलेगा। कभी तो बाहर निकलूंगा। वे जान तो ले ही न लेंगे?"

हमारे जो पैसे बचे हुए थे हम लोगों ने उसकी दही और चीनी खाने के वक़्त, उसके लिये मंगवा दी। वह ले नहीं रहा था, बड़ी मुश्किल से लेने के लिये राजी हुआ। उससे मैंने कहा, "आज तुम आराम करो, जब बुलाने आयेंगे तब देखा जायगा।"

आज उसने सोच रक्खा था कि अगर बुलाने आयेंगे तो आसानी से हरगिज़ न जायगा; देखा जायगा जो कुछ होगा। खाना खाकर वह सो गया। मुझे नींद नहीं आ रही थी। मैं जाकर खिड़की पर

बैठ गया। खिड़की बहुत छोटी थी, उस पर दो आदमी बैठ नहीं पाते थे। इसलिए मौलाना ने जो फट्टे वहाँ पड़े हुए थे उन सब को लपेट कर एक मूँढ़ा जैसा बना लिया। उसको खिड़की के पास रख कर वह उसी पर बैठ गया और कहने लगा, "देखो, मैंने एक कुर्सी तैयार करली।"

मैंने कहा, "इसमें तो बहुत से खटमल होंगे; देखो, अभी काटना शुरू करेंगे। एक काम करो, इस पर अपनी दरी को तह करके रख लो; फिर बैठना।"

मौलाना ने दरी की तह की और उस पर बैठ गया। हम लोग बैठे हुये कोतवाली में आने जाने वाले लोगों को देख रहे थे। इतने में एक बूढ़ा, दाढ़ी वाला मुसलमान मैली सी अचकन पहिने हुए वहाँ दिखाई पड़ा। वह सिपाही की आँख बचाकर खम्भे के पीछे खड़ा होकर हम लोगों को देखने लगा। मौलाना ने उसे देखते ही मुझ से कहा, "अरे, ये तो फ़य्याज़ के बाप हैं। ज़रा हटना तो खिड़की से, ये क्यों आये हैं।" मैं फ़य्याज का जानता था। वह भी काम करता था; वह भी पकड़ा गया था और उन दिनों काज़ीहौज़ की हवालात में बंद था। मौलाना ने इशारे से पूछा "क्या बात है?" उन्होंने कुछ कहा। मौलाना ने मेरा नाम लेकर कहा, "देखो, ये तुम्हारा नाम ले रहे हैं।"

मैंने खिड़की पर जाकर देखा तो वह मेरा नाम लेकर ही पूछ रहा था। अपने को उंगली के इशारे से दिखाते हुए मैंने कहा, 'हाँ! मैं ही हूँ'। उसने अपने हाथ की मुट्ठी को ढीला करके दिखाया। उसमें एक कागज़-खत जैसी चीज़ थी। मैंने मौलाना से कहा, "मौलाना, शायद यह ख़त लाया है। इससे कैसे लिया जाय?"

मौलाना खिड़की पर आगया। उसने धीमी आवाज़ में कहा, 'इधर से होकर चले जाओ।' वह बूढ़ा व्यक्ति जल्दी से खम्भे के पीछे से आया और खिड़की के पास से जाते हुए वह ख़त जंगले में

डाल गया । लौटकर वह बिलकुल संतरी के पास से निकला । संतरी उस समय खड़ा हुआ बाहर की तरफ़ देख रहा था । उसको जाते हुए संतरी बड़े गौर से देखने लगा; शायद, रोकना भी चाहता था। लेकिन, उसके इरादा करने के पूर्व ही वह बूढ़ा व्यक्ति दरवाज़े से होता हुआ, पीछे की ओर देखे बिना ही, वहाँ से चला गया ।

दीवार के सहारे खड़े होकर मैंने ख़त खोला । मौलाना खिड़की पर खड़ा हुआ देख रहा था कि कोई देख तो नहीं रहा है ।

ख़त बहुगुना ने भेजा था । वह काजीहौज के थाने में बंद था। उसने उस पत्र में सब हाल लिखा था कि किसने क्या पुलिसवालों को बताया है । कौन कहाँ-कहाँ बंद है । इसी प्रकार की कुछ और बातें लिखकर वह यह चाहता था कि कोई ऐसी बात न हो जिसके कारण हम दोनों चक्कर में पड़ जायँ । मैंने तो पहिले से इरादा कर लिया था कि इन लोगों को कुछ भी नहीं बताऊंगा, चाहे जो कुछ हो जाय। लेकिन, ख़त पढ़कर यह मालूम होगया कि आख़िर, वे लोग कहाँ पर हैं ।

मौलाना ने पूछा, 'यह ख़त किसका है ?'

मैंने उसको बता दिया कि यह ख़त बहुगुना का है और उसने ये बातें लिखी हैं । ख़त को दो बार पढ़ने के बाद मैंने कहा, "अच्छा, मौलाना; तुम ज़रा देखते रहो, इसे मैं जला देना चाहता हूँ ।" नाली में से दियासलाई निकालकर मैंने उस ख़त को जला दिया और जब जलकर ख़त्म होगया तो उसको ज़मीन पर ख़ूब रगड़ दिया, जिससे उसका कोई भी चिह्न अवशिष्ट न रहे ।

उसके बाद कुछ बेचैनी सी मालूम होने लगी । पहिले भी मुझे कुछ ऐसा मालूम होता था कि कुछ लोगों ने पुलिस वालों को पूरे-पूरे बयान देकर बहुत-सी बातें बतादी हैं और अब, बहुगुना का ख़त पढ़ने के बाद वह सन्देह पक्का हो चला । परेशानी भी कुछ ज़्यादा बढ़ गई ।

उस दिन शाम तक वे लोग न तो मुझे बुलाने आये और न उस लड़के को ही । शाम को फिर यह शक होने लगा कि शायद वे उस लड़के को बुलाने आवें । लेकिन, शाम को भी वे लोग नहीं आये ।

रात को बैठकर हम लोग बातचीत कर रहे थे । वह लड़का पिछले दिन की बातों को भूल सा गया था । दिनभर उसे जो फ़िकर लगी हुई थी वह ख़त्म हो गई थी । रात को लगभग नौ बजने वाले थे । कोठरी के जंगले पर फिर कुछ भीड़ भाड़ सी दिखाई पड़ी । मैंने सोचा कि कहीं किसी को ले जाने को तो नहीं आये । मौलाना और वह लड़का भी खिड़की पर देखने के लिये आगे । वहाँ पर एक थानेदार और चार पांच सिपाही एक बहुत मोटे लाला को पकड़े खड़े थे । जमादार ने फाटक खोला और लाला को अन्दर बंदकर दिया ।

मैं और मौलाना जाकर अपने बिस्तरे पर लेट गये । वह लड़का भी पास में बैठ गया । लाला सांवले रंग का था । उसका वजन तीन मन से कम न होगा । बंद होने के बाद कुछ देर तक तो वह दरवाज़े पर खड़ा रहा । उसके बाद कमरे में बिलकुल बीच में ठीक रोशनी के नीचे पल्थी मारकर बैठ गया । टोपी उतार कर परेशानी की हालत में वह अपने सिर को खुजला रहा था । उसकी तरफ मुंह करके हम लोग लेटे हुए थे । जब वह ठीक ढंग से बैठ गया तो मैंने बड़ी नम्रता पूर्वक उससे पूछा, "कहिए, लालाजी ! आपका यहाँ कैसे आना हुआ ?"

उसने हम लोगों की तरफ देखा और बोला, "अजी, क्या बताऊँ आपसे ! मैं तो बिना बात की आफत में फँस गया हूँ । आज दिन में इन्होंने मेरी दुकान की खाना तलाशी ली तो उसमें कुछ नहीं निकला ?"

मैंने बीच में ही उसकी बात काटकर पूछा, "आपकी दुकान किस चीज़ की है ?"

वह बोला, 'जी, मेरी वनस्पती घी की दूकान है। हाँ! इसके बाद उन्होंने मेरे घर की तलाशी ली। वहाँ पर भी कुछ नहीं था। लेकिन चलते वक्त एक सी आई० डी वाले ने एक आले में से एक रूमाल उठाकर दिखाया। उसमें १५०) की रेज़गारी थी। बस, इसी पर मुझे पकड़ लाये हैं।'

मैंने कहा, 'शायद आपके किसी दुश्मन ने वह रेज़गारी वहाँ रख दी होगी ?'

वह बोला, 'जी हाँ, मैं तो ऐसा काम कभी नहीं करता।'

उस ज़माने में लोग रेज़गारी जमा कर रहे थे। कई जगह पुलिस ने धावे किये थे और काफ़ी रेज़गारियाँ मिलीं थीं। उसी चक्कर में ये सेठजी भी आये थे।

कुछ रुककर उसने पूछा, "आप लोग यहाँ कैसे आये हैं ?"

मौलाना ने उत्तर दिया, 'हम लोग कांग्रेस में हैं।'

'ओ हो', फिर लड़के की तरफ मुड़कर उसने पूछा, "भैया! तुम क्यों पकड़े गए ?"

वह बोला, 'मेरे पास एक रिवालवर निकला था।'

सिर को खुजलाते हुए लालाने पूछा, 'रिवाल्वर ! झूठी थी या सच्ची ?'

वह लड़का उसकी शक्ल को देखता रह गया। हम लोगों को भी हँसी आ गई। लाला बिलकुल उसी तरह से बैठा रहा।

इसके बाद हम लोग खिड़की पर आकर बैठ गए। श्यामलाल ने पूछा, 'कहो, भाई! आज तो तुम्हारे यहाँ बड़े मोटे मेहमान आये हैं! कौन हैं ?'

मैंने कहा, 'भाई, एक लालाजी आये हैं। उनकी वनस्पति घी की दुकान है। पुलिस, रेज़गारी इकट्ठा करने का झूठा दोष लगाकर पकड़ लाई है।'

लाला ने मुझे अपने बारे में कुछ कहते हुए सुना तो वहीं से

हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए बोला, "बाबा! मुझे माफ़ करदो। मेरे बारे में किसी से कुछ मत कहो। मैं बहुत ग़रीब आदमी हूँ। मैं मारा जाऊँगा।"

मैंने कहा, 'हमारे ही साथी थे लालाजी, वे भी कांग्रेस में हैं। लेकिन आप नहीं चाहते तो लीजिये मैं कुछ नहीं कहूँगा।'

'हाँ बाबा! बस, मुझे बख़्श दो!'

एक सिपाही लाला का गद्दा और लिहाफ जंगले से दे गया। उसने ठीक बीचों बीच में अपना बिस्तरा लगा दिया। उसके पास वह रिवाल्वर वाला लड़का सो रहा था। हम लोग भी सोने के लिये लेट गये।

लाला ने लेटते ही ज़ोर ज़ोर के खुर्राटे लेना शुरू कर दिया। थोड़ी देर तक हम सुनते रहे। वह लड़का भी जग गया था। लेकिन लाला के खुर्राटों की आवाज़ कम होने के बजाय बढ़ती ही गई। उस लड़के से न रहा गया। उसने अपनी उँगली लाला की तोंद में गड़ा दी और जगाकर कहा, 'लाला, यह क्या कर रहे हो ? औरों को भी सोने दोगे या नहीं ?'

लाला बोला, 'भैया! मैं क्या करूँ ? मेरा तो बादी का शरीर है। बस, देखने में ही यह बड़ा है, पर इसमें जान बहुत थोड़ी है।' इतना कहने के बाद वह करवट लेकर लेट गया।

हम लोग भी सो गये। लाला ने खुर्राटे लेना बंद कर दिया था।

× × ×

मौलाना के साथ खाना खाने की वजह से करीब करीब सा हिन्दू सिपाही मुझसे नाराज़ होगये थे। वे अब अजीब ढंग से मेरी तरफ़ देखते थे। अपने साथियों से मेरे बारे में बातें करते थे। उनकी बातों का एक दो शब्द मुझे भी सुनाई पड़ जाता। किन्तु उनमें से किसी ने अभी तक मुझसे कुछ नहीं कहा। पहिले दिन, रात को

बात करते हुए श्यामलाल ने कहा, "आज संतरी तुम्हारे बारे में बहुत सी बातें कर रहा था। वह कह रहा था, देखिये ये भी हिन्दू हैं ! मलेच्छ के साथ खाना खाते हैं। ये लोग तो पाखाना जाकर हाथ भी नहीं धोते। इसी प्रकार की और भी बहुत सी बातें वह कह रहा था। मैंने उसे समझाने की कोशिश तो की ; लेकिन, ये चीज़ें ऐसी हैं जो उसकी समझ में आ ही नहीं सकतीं।"

सुबह जिस संतरी ने मुझे बाहर निकाला, वह पंजाबी था। हथकड़ी पहिनाते वक्त ही उसने बड़ी कड़ाई से उन्हें बंद किया था। जहाँ हम लोग नहाया करते थे वहीं पर बहुत से नल लगे हुए थे और उस समय कोतवाली के दूसरे सिपाही भी नहाते रहते थे। जब मैं शौच के लिये गया तो वह अपने साथियों से मेरे बारे में बातें करता रहा। मैं हाथ धोने के लिये जब नल की तरफ़ बढ़ा तो वह बोला, "चल, तू हाथ धोकर क्या करेगा ? मुसलमान हाथ थोड़े ही धोते हैं।"

मैंने कहा, "क्या मतलब ?"

वह चुप हो गया। हाथ धोने के बाद जब मैं नहाने के लिये चला तो वह फिर बोला, "चल, देर हो रही है। नहलाने का हमको हुक्म नहीं है।"

मुझे पहिली ही बात अभी तक भूली नहीं थी। उसने एक और चोट कर दी। हाथ धोने के लिये उसने हथकड़ियों की जंजीर छोड़ दी थी। जंजीर को हाथ में सँभालते हुए मैंने कहा, 'तू, करके क्यों बात करता है ? मारे हथकड़ियों के तेरा सिर तोड़ दूँगा। तुझे नहलाना पड़ेगा और नहीं तो देखता हूँ तू मुझे यहाँ से कैसे ले चलता है ?"

जमादार को जाते हुए देख कर उसने आवाज़ देकर उसे बुलाया। जमादार ने आकर पूछा, "क्या बात है ?"

वह बोला, "ये चलने से इनकार करते हैं।"

उसकी बात बीच में ही काटकर मैंने कहा, "मैंने इससे नहलाने के लिये कहा था और इसे बता भी दिया था कि मैं रोज़ नहाता हूँ, आज कोई नई बात नहीं है। इसपर यह 'तू' करके बदतमीज़ी से बात करने लगा।"

जमादार ने भी सिपाही की तरफ़दारी करते हुए कहा, 'देखिये, साहब ! आज तो हम आपको नहलाये देते हैं, लेकिन कल से हम सी० आई० डी० वालों से कह देंगे कि वे अपने आदमी यहाँ आप लोगों को बाहर निकालने के लिये भेजें। हमारे आदमी २-२ घंटे खड़े रहकर आपकी टहल नहीं कर सकते।"

मैंने कहा, "खैर, कल तुम जो चाहो करना ; इससे हमें कोई मतलब नहीं। चाहे तुम निकालो या सी० आई० डी० वाले निकालें ; हमतो सुबह नहाते हैं और रोज़ नहायेंगे।"

उसने चुपचाप मेरी हथकड़ी पकड़ी और नहलाने ले गया। उसकी बातें बहुत देर तक मेरे दिमाग़ से नहीं निकल सकीं !

करीब ६॥ बजे के दारोगा और कुछ सिपाही उस लड़के को ले जाने के लिए आये। खिड़की पर खड़े होकर मैंने सिपाही से पूछा, "कहाँ ले जा रहे हैं ?" उसने कहा, "आज पेशी है, कचहरी जाना होगा।"

इसके बाद जमादार ने अपने रजिस्टर में से उसका नाम काट दिया। यह देखकर हमको पूरा यकीन होगया कि इसे ये लोग कचहरी ही ले जा रहे हैं। वह नमस्कार करके चला गया। सुबह की बातचीत से जो परेशान था। उस दिन मौलाना से भी ज्यादा बातें नहीं हुईं। खाना खाकर सोने की कोशिश कर रहा था, कि इतने में मौलाना ने मुझे आवाज़ दी। आँख खोलकर जैसे ही उठकर बैठा उसने कहा, "लो, आज ये लोग तुम्हें बुलाने आये हैं ; कपड़े पहिनकर तैयार हो जाओ।'

मैंने देखा दरवाजे पर जमादार और दो तीन सी० आई० डी० वाले खड़े हुए हैं। उठकर मैंने अपने कपड़े पहिने और चलने के लिये तैयार हो गया। खिड़की पर उन लोगों ने हाथों में हथकड़ियाँ डाल दीं।

चलते हुए एक सी० आई० डी० वाले से मैंने पूछा, "कहाँ चलना है ?"

वह बोला, "घबराइये नहीं, अभी आपको मालूम हुआ जाता है कि कहाँ जाना है।" कोतवाली में अन्दर आनेवाले दरवाज़े से होकर वे लोग बरामदे से होते हुए उस कमरे में ले गये जिस कमरे में पहली रात को जगाने के बाद सी० आई० डी० वालों ने मुझे बैठाया था। यहाँ पर एक मेज़ पड़ी हुई थी। उस मेज़ के सामने वाली कुर्सी पर वही इन्सपेक्टर जो मुझे पकड़ने गया था, बैठा हुआ था। कमरे में दाख़िल होते ही वह बोला, "आइये, मिस्टर जगदीश ; आइये। मेज़ के बगल में वही एक टूटी हुई कुर्सी रखी थी। उसी कुर्सी को दिखाते हुए वह बोला, "आओ बैठ जाओ।" सी० आई० डी० वाले वहीं पर खड़े हो गये।

कुर्सी पर बैठ जाने के बाद उसने पूछा, "कहिये, यहाँ पर आपको कोई तकलीफ़ तो नहीं है ?"

उसके चुप होते ही मैंने कहा, "यहाँ कोई आराम करने के लिये तो लाया नहीं जाता फिर जो तकलीफ़ें यहाँ होती हैं, उन्हें आप लोग अच्छी तरह जानते ही हैं। उनकी शिकायत करने से फ़ायदा ही क्या ?"

वह मेरी बात सुनकर चुप हो गया। उसके बाद जम्हाई लेते हुए उसने अपनी जेब से सिगरेट-केस निकाला। एक सिगरेट खुद अपने मुंह में लगाते हुए और सिगरेट-केस मेरी तरफ़ बढ़ाकर उसने कहा, "लीजिये, सिगरेट पीजिये।" मैंने उसके सिगरेट-केस से सिगरेट निकाल ली। हालाँ कि मन में सोच रहा था कि इनकार कर दूँ, लेकिन, इन छोटी छोटी बातों में विरोध प्रकट करना अच्छा नहीं लगता।

वह फिर कहने लगा, "इन दिनों, मैं बहुत काम में फंस गया था; इसलिये, नहीं आ सका नहीं तो आपसे पहले ही मिलना चाहता

था। हाँ! एक बात मैं तुमसे कहना भूल गया था। तुम्हारा साथी बहुगुना काज़ी हौज़ के थाने में बंद है। उसने तुम्हारा हाल चाल पूछा है। अगर कुछ लिखकर देना चाहो तो दे दो; मैं उसे शाम को दे दूँगा।"

मैंने कहा, "लिखकर क्या देना है ? आप जाकर कह दीजियेगा कि अच्छा हूँ। कोई ख़ास बात नहीं है।"

सिगरेट का एक गहरा कश खींचते हुए वह बोला, "जिस दिन मैंने तुम्हें पकड़ा था उसी दिन मैंने सोचा था कि काज़ी हौज़ के थाने में ले चलूँ। लेकिन, हम लोग साथ के काम करने वालों को एक जगह नहीं रखते। फिर आपकी शिनाख्त भी करानी थी। आपने अपना नाम भी तो ठीक नहीं बताया था।"

बीच में ही उसको रोककर मैंने कहा, "लेकिन पहिचनवाने की तो आपको ज़रूरत पड़ी नहीं। मैंने तो खुद ही अपना नाम आपको बता दिया था।"

सिर हिलाते हुए वह बोला, "नहीं; आपके बताने से पहिले हम आपको पहिचनवा चुके थे। जब आपको लाकर हमने बाहर बेंच पर बैठाया था, तभी उस आदमी को हमने कमरे में ऐसी जगह खड़ा कर दिया था कि वह तो आपको देख सके लेकिन आप उसे न देख सकें। असल में पहिचनवा तो हम आपको आपके घर पर ही लेते; लेकिन, हम उस आदमी को आपके सामने लाना नहीं चाहते थे।"

उसी दिन मुझे कुछ शक हो गया था। वह आदमी कौन है जिसने मुझे पहिचाना होगा ? यही बात दिमाग़ में घूमने लगी। जी में आया कि इससे पूछूँ कि वह कौन आदमी था। लेकिन फिर सोचा, जब ये लोग उसे मेरे सामने इसीलिये नहीं लाये कि ये मुझे उसका पता नहीं देना चाहते थे, तो फिर मेरे पूछने पर यह बतायेगा भी नहीं। लेकिन, एक बात कुछ ख़्याल में आ रही थी। यहाँ के सी० आई० डी० वाले तो मुझे जानते नहीं। अवश्य ही यह ऐसा कोई

आदमी है जो हमारे साथ काम करता था और अब जाकर इन लोगों से मिल गया है। वही सब लोगों को पकड़वा रहा है। कई आदमियों पर ख्याल गया लेकिन आज तक पूर्ण रूप से निश्चय नहीं कर पाया कि वह व्यक्ति कौन था। शक कई लोगों पर रहा और अब भी है।

मेज़ पर से टाइप हुए कागज़ों के एक फ़ाइल के पन्ने उलटते हुए वह बोला, "देखिये, ये सब बयानात हैं जो आपके साथियों ने दिये हैं। इनमें आपका भी जिक्र है। जहाँ जिसका नाम आता गया है, वहीं पर निशान लगा दिया है। हमें वैसे तो आपके बारे में सब कुछ मालूम है लेकिन आपसे भी ज़रा सुनना चाहते हैं कि आपने क्या क्या किया।"

इसके बाद वह फिर पन्ने उलटकर पढ़ता रहा। उस फ़ाइल के अतिरिक्त और भी कई फ़ाइलें इसी प्रकार टाइप किये हुए कागज़ों से भरी रक्खी हुई थीं। उनमें से एक दो तो कई सौ पन्नों की थीं। एक दूसरी फ़ाइल लाल फीते से बंधी हुई रक्खी थी। इसमें मेरे यहाँ से जो कागज़ और पत्र निकले थे वे सब बंधे हुए थे। बहुगुना ने अपने पत्र में जो लिखा था उसका वास्तविक स्वरूप मेरे सामने था। अख़बार में इलाहाबाद में ही पढ़ चुका था कि श्रीवास्तव नाम के एक व्यक्ति ने सारी बातें इन लोगों को बतादी हैं। उसके अलावा उसने बहुत से लोगों के नाम और जगहों के पते भी बता दिये हैं।

फ़ाइल पढ़ने के बाद उसने उसे मेज़ पर रख दिया और फिर ऊँघने लगा। मुझे भी थोड़ा सोचने और सम्हलने का मौका मिला। सी० आई० डी० वाले लगातार मेरी तरफ़ ही देख रहे थे।

आध घंटे बाद उसने आँखें खोलीं, "हाँ ; तो बताइये, यहाँ आप आये कब थे?" ऊंघते हुए उसने पूछा और फिर आँखें बंद करलीं। मैंने उसको वही उत्तर दिया जो पहिली रात को दे चुका था। नहीं जानता उसने उसे सुना भी या नहीं।

थोड़ी देर बाद उसने एक सिगरेट सुलगाई और दो चार दम

मारने के बाद कहने लगा, "एक बात आप बताइये! जो ख़त यज्ञदत्त के बक्स में से निकले थे वे आपके थे, इसमें कोई शक नहीं हो सकता! वे ख़त एक लड़की के लिखे हुए हैं। उन ख़तों में आंदोलन और प्रेम दोनों का खासा बयान है। यज्ञदत्त को कोई लड़की ऐसे ख़त नहीं लिख सकती! वह लड़की तो मालुम पड़ती है कि आप पर जान देने को तैयार बैठी है।" इतना कहकर वह मेरी तरफ़ देखने लगा।

मैं भी सोच रहा था कि इसका इसे क्या जवाब दूँ। चुप रहना भी ठीक नहीं था। मैंने कहा, "आपका ख़्याल बिलकुल ग़लत है। अगर खत मेरे होते तो यज्ञदत्त के बक्स में होने के बजाय मेरे कोट की जेब में होते। ऐसे ख़त दूसरों के बक्स में नहीं रखे जाते। वे तो दिल के पास रखे जाते हैं!"

इन बातों में वह बड़ा आनन्द ले रहा था। ज़रा हँसकर और सिर नीचा करके वह कहने लगा; "यार, तुम बातें बता नहीं रहे हो। हम लोग भी इतने संगदिल नहीं हैं कि किसी के दिल को दुखाएं। ख़त तो वे तुम्हारे ही हैं। अभी तुम जवान हो, देखने भालने में भी अच्छे हो, और पढ़े लिखे भी हो। फिर इस आंदोलन में काम कर रहे हो। ये ही सब चीज़ें हैं जो लड़कियों को पसंद होती हैं। यज्ञदत्त तो वैसे ही शादी शुदा आदमी है और तुम्हारी वजह से ही फंस गया है। देखने में भी कुछ अच्छा नहीं है।"

इतना कहकर वह चुप हो गया और उत्तर की प्रतीक्षा में मेरे मुंह की तरफ़ देखने लगा।

मैंने कहा, "आप जानते हैं, प्रेम में दिमाग़ी तर्क के आधार पर लोग एक दूसरे से नहीं मिलते। वह दिल की दुनिया होती है जिसके नियम ही अलग होते हैं। उसमें क्या हो, कैसे हो; इसको तर्क की कसौटी पर कसकर हम नहीं जान सकते। इसलिये, आप जो सारी परिस्थितियों क इकट्ठा करके एक नतीजा निकालना चाहते हैं वह ग़लत है।"

इसी प्रकार की बहुत सी ऊटपटाँग बातें उससे होती रहीं। पहले दिन की मुलाकात में वह मुझसे झगड़ा मोल नहीं लेना चाहता था और मैं भी जहाँ तक हो इधर उधर की बातों में समय काटना चाहता था। पुलिसवालों को ऐसे किस्सों में कुछ दिलचस्पी भी ज़्यादा आती है।

थोड़ी देर बाद वह बोला, "अच्छा! आपकी क्या राय है? बंगाल में लड़कियाँ ज़्यादा हैं और पंजाब में मर्द ज़्यादा हैं! अगर पंजाबी लोग बंगालियों से शादी करने लगें तो दोनों जगह की मुसीबत दूर हो जाय।"

मैंने कहा, "आपका ख्याल तो बड़ा अच्छा है। इसका आप प्रोपेगैंडा करें तो शायद लोगों के दिमागों में यह बात जम जाय।"

इसके बाद वह धर्म के विषय में बात चीत करता रहा। जब तक लड़कियों की बातें होती रहीं तब तक तो वह खूब बात चीत कर रहा था लेकिन जब किसी दूसरे विषय पर बात चीत चलती तो वह बीच बीच में ऊँघने लगता था।

इसी तरह की बातों में शाम हो गई। उसने एक सी० आई० डी० वाले को भेज कर पता लगाया कि उसके साहब अभी दफ्तर में बैठे हैं या चले गये। सिपाही ने आकर उसे बताया कि साहब चले गये। उसने मुझे भी ले जाने के लिये कहा और अपने कागज़ बटोरने लगा।

लौटकर जब वापस कोठरी में आया तो काफ़ी अंधेरा हो चुका था। मौलाना मेरा इन्तजार कर रहा था। आते ही उसने पूछा, "कहो, कैसी गुज़री?"

मैंने उसे सारी बातें सिलसिलेवार सुनादीं। इसके बाद वह कहने लगा, 'आज तुम्हारा पहिला दिन था; इसलिये, उसने कुछ नहीं कहा। लेकिन सभी बातों के लिये तैयार रहना चाहिये।" शाम को खाना खाने के बाद टहलते हुए मौलाना बहुत सी बातें करता रहा। रात को जब हम लोग बातें करने बैठे तो श्यामलाल से मैंने सब बातें बताईं।

फ़ाइलों की बाबत सुनकर वह कहने लगा, "हाँ! श्रीवास्तव तो मेरे सामने ही यहाँ पर था। उसने और उसके एक साथी ने बहुत सी बातें इन लोगों को बता दी थीं। मैं तुमसे खुद बताने वाला था; लेकिन, मैंने इसी लिये कुछ नहीं कहा कि इसका कोई बुरा असर न हो।"

उस दिन रात को बातों में मन नहीं लग रहा था। बहुत सी बातें दिमाग़ में आतीं और फिर कुछ भी सोचने को न रह जाता, मैं सोच रहा था कि अब आगे चल कर इन्सपेक्टर से किस तरह बातचीत की जाय। आज की जैसी बातें तो रोज़ाना होंगी नहीं। वह तो खास चीजें जानना चाहता है और जब मैं उसे बताऊँगा नहीं तो वह कुछ भी कर सकता है। किस तरह से उन सब चीजों का मुकाबला किया जायगा? कहीं कमज़ोरी न आ जाय!

रात को जब सो रहा था तो नींद नहीं आ रही थी। यकायक राज् का ख्याल आया। वह जब पहिले पहिल मिला तो कितना बहादुर लगता था! फौज वालों ने उसे बेंतें मारी लेकिन उसने एक भी बात नहीं बतलाई। लौटकर आने के बाद उसने अपनी कमर मुझे दिखाई थी। उस पर खाल के उधड़ आने के कारण धारियाँ पड़ी हुई थीं। जब पहिले पहिल वह मिला था तो खम्भे पर चढ़ा हुआ तार काट रहा था। उस दिन उसने कहा था, 'इन सबका बदला जब तक अँग्रेजों से न ले लेंगे तब तक चुप नहीं होंगे।' उसके अलावा हर एक काम के लिये वह तैयार रहता था। जिस दिन वह प्रेस चुराने गया था उस दिन मेरे मना करने पर भी वह नहीं माना। पकड़े जाने पर भी वह शुरू शुरू में उन लोगों से बहादुरी से बात करता रहा। उसने कहा था; "मैं तो इस इमारत को फूँकने आया था।" और फिर! फिर क्या हुआ? वह उन लोगों के साथ मिल गया। उसने सारी जगहें बता दीं; उसने सबके नाम बता दिये और किसी को भी नहीं छोड़ा। उसके सबसे पहिले साथी भाई जी थे, उनको भी उसने पकड़वा दिया। वह कैसे ऐसा बदल गया?

और यह श्रीवास्तव ! वह तो पुराना क्रान्तिकारी था और पहिले भी बहुत से लोगों के साथ काम कर चुका था। वह साथ में हमेशा भरा हुआ पिस्तौल लेकर चलता था और पिस्तौल के साथ ही पकड़ा भी गया था। इसने कैसे सब कुछ बता दिया ? राजू तो बेपढ़ा-लिखा था; लेकिन यह तो बी० ए० पास था। और अगर बताना ही था तो उतनी ही बातें बताता जितनी उससे सम्बन्ध रखती थीं। उसने दूसरों के बारे में भी एक एक बात बता दी। यहाँ तक बता दिया कि किस दिन कौन कौन कहाँ कहाँ रहे और क्या खाया ? यह सब उसने कैसे बताया ? कैसे इतनी जल्दी ये लोग बदल जाते हैं ? क्या कठिन परिस्थितियों में हर एक आदमी बदल सकता है ? क्या मैं भी बदल सकता हूँ ? ये सब बातें दिमाग़ में आ रही थीं; लेकिन कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसा क्यों होता है ? कभी कभी मुझे स्वयं अपने ऊपर से विश्वास उठता-सा मालूम होने लगता था !

पूरी कोतवाली में बिलकुल सन्नाटा छा गया था। बाहर बरामदे में संतरी पत्थरों पर बूटों की एड़ियों की आवाज करता हुआ पहरा दे रहा था। पैरों पर खटमल काट रहे थे।

फिर ख्याल आया भाई जी का ! वे गुजराती हैं ! बेसिक ट्रेनिंग कालिज में आर्ट के टीचर थे। उनको राजू ने पकड़वा दिया था। वे बहुत सीधे लेकिन धुन के बड़े पक्के थे। दिन रात काम किया करते थे। उनको पकड़कर १६ दिन हवालात में रखा गया था। पहिले दिन रशीदअली, शहर कोतवाल ने उन्हें पकड़ कर बहुत पीटा था। फिर सीने पर रिवाल्वर रख कर उसने कहा, "अपने साथियों की जगह बताओ, नहीं तो गोली से तुमको मार दूँगा।"

भाई जी ! जैसा विश्वासनीय व्यक्ति भी घबड़ा गया था। उसने भी बहुगुना का और मेरा स्थान बता दिया था। बहुगुना छत से कूद कर पुलिस के घेरे से भाग गया था और मैं उस दिन वहाँ पर मौजूद नहीं था।

उसके बाद १६ दिन तक उन्होंने भाई जी को कपड़े नहीं दिये। खाने के लिये तीन आना रोज देते थे। उस पर भी रोज आकर बुरी तरह से पीटते थे। लेकिन आगे बताने से भाई जी ने इनकार कर दिया। उन्होंने सब कुछ सहा पर एक बात भी ज़बान से आगे नहीं कही। उसके बाद मार अपना असर खो चुकी थी। और कुछ लोगों ने बिना मार खाये ही सब कुछ बता दिया। उनके साथ हो गये ? सबको पकड़वा दिया ?

इसी तरह के बहुत से विचार आते और चले जाते ! रात को बहुत देर बाद आख़िर नींद ने आकर इस ख्याली दुनिया का अन्त कर दिया।

दूसरे दिन मौलाना की पेशी का भी दिन था। सुबह से ही उसने जाने को तैयारी शुरू कर दी थी। उसने बिस्तर वगैरह सब बाँध लिया था। उस पर से दफ़ा १२६ हटा ली गई थी। उसने मुझसे कहा, "आज अगर मेरा मुकदमा हुआ तो या तो मैं छोड़ दिया जाऊँगा या सज़ा करके जेल भेज दिया जाऊँगा।"

दिन के ६॥ बजे वह मौलाना को लेने आ गये। मौलाना ने आदाबअर्ज़ किया और उन लोगों के साथ हथकड़ियों में बँधा चला गया। आज सुबह से ही उसके चेहरे पर चिन्ता थी—अज्ञात भविष्य की चिन्ता की झलक दिखाई पड़ रही थी। कैसा भी मज़बूत आदमी क्यों न हो फिर भी चिन्ताकुल तो हो ही जाता है। वास्तविक कठिनाइयों से बढ़कर, आने वाली विपत्ति की आशंका अधिक भयंकर होती है।

एक घण्टे बाद वे मुझे भी लेने आ गये। आज भी वही कमरा था जिसमें पहिले दिन हम लोग बैठे थे। इन्सपेक्टर वहाँ पर पहिले से ही मौजूद था। बिलकुल पहिले दिन का सा ही नक़शा था।

उसने पूछा, "कहिये आपको किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं है ?"

आज जब मौलाना जाने लगा तो अपना बिस्तर भी साथ ले

गया। मैं यही सोच रहा था कि अब रात को कैसे सोया जायगा? सोचा कि जमीन पर ही लेट जाऊँगा। उन फट्टों को बिछाने की तो हिम्मत थी नहीं। मैंने कहा, "आप किसी को भेज कर यज्ञदत्त को खबर कर दीजिये कि वह मेरा बिस्तर यहाँ ले आये! करीब १२ दिन हो गये हैं और अभी तक बिस्तर के बिना बड़ी तकलीफ हो रही है।"

वह जरा सकुचा कर बोला, "मैंने अपना आदमी भेजकर यज्ञदत्त को बुलाया था लेकिन उसका पता ही नहीं लगा। आपका बिस्तर भिजवाने का मेरा पहिले से ही ख्याल था।" एक सी० आई० डी० वाले से उसने कहा, "जाकर यज्ञदत्त से कह देना कि वह इनका बिस्तर दे जाय।"

मुझे जरा ताज्जुब हुआ कि वह इतनी मेहरबानी कैसे दिखला रहा है?

थोड़ी देर बाद वह बोला, "देखिये, मि० जगदीश! मैं आपसे साफ बता दूँ। आप यू० पी० के हैं। हम यू० पी० वालों को ज़्यादा परेशान नहीं करना चाहते। हमारा मतलब तो सिर्फ देहली से है। हम तो यहाँ की बाबत जानकारी हासिल करना चाहते हैं। आगे आपसे अगर कुछ मालूम करना होगा तो यू० पी० वाले खुद आकर आपसे पूछेंगे।"

इसके बाद उसने मेरे लिखे कागजों की एक फाइल उठाई। एक एक कागज निकाल कर वह सामने रखता गया और दूर से दिखा कर कहने लगा, "देखिये, यह आपके हाथ का लिखा हुआ है न?"

और मैं, इनकार ही करता जाता। जब मैं उसको अपना मानने से इनकार करता तभी उसके मुख की आकृति कुछ विकृत हो जाती; किन्तु, वह फिर से अपने को सम्हाल कर आगे बढ़ता। सब कागजों को दिखा चुकने के बाद उनको फिर से फाइल में लपेटते हुए वह कहने लगा, "देखिये, आप चाहे इन्हें मेरे सामने अपना न बताइये लेकिन हमारे पास तो एक्सपर्ट हैं। वे तो पहिचान ही लेंगे। उनकी बात को ही सरकार मानती है।"

इसके बाद वह फिर खामोश हो गया। वह मेज पर अपनी उँगलियों को चलाता हुआ कुछ सोचता रहा। इसके बाद माथे पर हाथ रखकर उसने आँखें बन्द कर लीं। आज उसकी आँखें कुछ लाल थीं। उसने करीब आधे घण्टे की नींद उसी कुर्सी पर बैठे बैठे ली।

आधे घण्टे बाद जब उसने आँख खोलीं तो उसकी आँखें बिलकुल लाल थीं। मैंने पूछा, "क्या रात भर जागते रहते हैं?"

एक जम्हाई लेकर वह बोला, "अरे साहब, आप भी क्या पूछते हैं! पुलिस की नौकरी बड़ी बुरी होती है। दिन भर तो यहाँ सिर मारते हैं और रात भर चौकीदारी करनी पड़ती है।"

थोड़ी ही देर में वह चेतन हो गया। फ़ाइल उठाकर उसने पलटना शुरू किया। एक जगह पन्ने को वह देर तक पढ़ता रहा। इसके बाद वह बोला, "अच्छा, आपके साथ दो लड़के इलाहाबाद से आये थे! आपने उन लड़कों को यहाँ बम बनाने के लिये रखा था।" श्रीवास्तव का नाम बताते हुए उसने कहा कि उसने यह बताया है।

मैंने कहा, "मैं तो अकेला इलाहाबाद से आया था। श्रीवास्तव साहब को तो मैं खुद भी नहीं जानता। उनसे दो लड़कों को मिलवाने की बात कहाँ से आ सकती है?"

उसके मुख पर थोड़ा सा गुस्सा आया। और जरा रुक कर दो चार बातें उसने और पूछीं। उनका भी जब उसको ऐसा ही उत्तर मिला तो फ़ाइल मेज पर रख कर वह कहने लगा, "आपसे तो बात करना ही बेकार है। आप तो हर एक बात से इनकार ही करते जाते हैं।"

इसके बाद वह कुछ देर तक बैठा रहा और फिर फ़ाइल उठा कर देखने लगा और प्रश्न पूछने लगा। इसी पूछने और फिर बिगड़ कर फ़ाइल रखने में बहुत सा समय बीत गया। आखिरकार फ़ाइल रख कर वह बोला, "देखिये, हमारे सामने जो भी बात आप कहेंगे उसको कोर्ट में माना नहीं जाता। कहिये तो मैं आपको लाकर वह कानून दिखा दूँ। आप भी क्यों बेकार इतना झूठ बोलते हैं?"

इसी तरह की बातों में सारा दिन चला गया। शाम को करीब छः बजे उसने मुझे कोठरी में वापस भेज दिया।

कोठरी में पहुँच कर देखा तो मौलाना पहिले से ही वहाँ मौजूद था। मैंने पूछा, "कहो, तुम कैसे वापिस आ गये?"

वह बोला, "अबकी बार इन पुलिस वालों ने फिर से पाँच दिन की रिमांड ले ली। अब पाँच दिन बाद पेशी होगी। अबकी बार मैजिस्ट्रेट ने बड़ी मुश्किल से इनको पाँच दिन की रिमांड दी है। इस बार ज़रूर फैसला हो जायगा।'

उस दिन रात को करीब आठ बजे तीन आदमी पकड़ कर आये और उस कोठरी में बन्द कर दिये गये। वे सब मैले कपड़े पहिने हुए थे। उनमें से एक लड़का था और दो प्रौढ़ व्यक्ति थे। इससे पहिले जो व्यक्ति हवालात में बन्द किये जाते थे वे थोड़ी देर तक कुछ भूले हुए से रहते थे; लेकिन ये तीनों बिलकुल चिन्ता विहीन थे। वे फट्टों को खींच कर उस पर बैठ गये। उनमें से एक ने अपनी धोती की टेंट में से एक छोटी सी डिबिया निकाली और तम्बाकू निकाल कर थोड़ा चूना मिलाया और हथेली पर रगड़ने लगा। उसके दूसरे साथी ने कहीं से तीन कौड़ी और एक आलू निकाला। तीसरे व्यक्ति ने जमीन पर कुछ खेलने के लिये नकशा सा बनाया और एक रोटी के टुकड़े को तोड़ कर गोट बना लीं। उसके साथी ने आलू के टुकड़ों की गोट बना लीं। तीसरे व्यक्ति ने दीवार के पलस्तर को तोड़ कर उसकी गोट बना लीं और उन्होंने निःसंकोच कौड़ियाँ डाल कर अपना खेल प्रारम्भ कर दिया।

ये सब चीजें वे खाना तलाशी देने के बाद भी छिपा लाये थे। उनके इस निःसंकोच तथा चिन्ता विहीन व्यवहार को देख कर यह जानने की इच्छा हुई कि आख़िर ये लोग कौन हैं?

थोड़ी देर तक खड़े होकर मैं उनको खेलते हुए देखता रहा। बिलकुल चिन्ता विहीन वे अपने खेल में मग्न थे। उनमें से एक के

बेईमानी करने पर दूसरे ने हाथ पकड़ कर चाल ठीक की। उसी बीच में मैं पूछ बैठा, "कहो भाई! तुम लोग क्यों पकड़े गये?"

एक आदमी हाथ में कौड़ी लिये खनखना रहा था। वह कौड़ी डालते डालते रुक गया। मेरी तरफ तीनों देखने लगे। उनमें से एक बोला, "हमको साहब, ये लोग एक रिक्शा की चोरी में झूठमूठ पकड़ लाये हैं। देखिये, यह बरामदे में रिक्शा खड़ा हुआ है। इसी की चोरी हम लोगों पर लगाई गई है।"

उसकी बोलचाल से मालूम पड़ता था कि वह देहली या यू० पी० के पश्चिमी जिले का रहने वाला नहीं है। मैंने पूछा, "तुम क्या कहीं बाहर से आये हो?"

वह बोला "जी हाँ! मैं फैज़ाबाद का रहनेवाला हूँ।" दूसरे साथी की बाबत मैंने पूछा, "यह भी वहीं का रहने वाला है?"

"जी, नहीं; यह आगरे का रहने वाला है।" और फिर लड़के की तरफ़ इशारा करके बोला, "यह गाजियाबाद का रहने वाला है।"

"तुम लोग सब इतनी दूर के रहने वाले आपस में मिल कैसे गये?"

"हम सब लोग यहीं रहते हैं। पास में रहते रहते एक दूसरे को जान गये हैं!"

"अच्छा, तो मामला क्या था?"

वह बोला, "यह लड़का रिक्शा चलाया करता है। यह स्टेशन से रिक्शा में सवारी बैठाकर चला। मालिक बैठा हुआ रोटी खा रहा था इसने एक आवाज़ लगाकर कहा भी, 'मैं रिक्शा ले जा रहा हूँ' लेकिन उसने सुना नहीं। जब रिक्शा लेकर चल दिया तो पीछे से मालिक भी दौड़ा और यहाँ फ़व्वारे पर आकर उसने हमें पकड़ लिया और रिक्शा की चोरी लगाने लगा। बस, यही किस्सा है।"

मैंने पूछा, "अच्छा जो सवारी रिक्शा में बैठी थी, वह कहाँ गई?"

उनमें से जो सबसे ज़्यादा गंदे कपड़े पहिने बैठा था, वह अपने मैले दांत दिखाते हुए मुस्कराया और दीवार के सहारे ज़रा आराम से कमर लगाकर बोला, "जी, सवारी मैं था।"

उसकी बात से मालूम होगया कि यह इन तीनों की साजिश थी। "हाँ! तो फिर कैसे पकड़े गये?"

जो सवारी बनकर बैठा था वह बोला, "अजी, पकड़ा इस लड़के ने दिया। मैं इससे कह रहा था कि जल्दी चल; लेकिन यह हाँफ गया इतने में वे लोग आगये।"

"अच्छा इस तरह से तुम दोनों पकड़े गये और यह तीसरा कैसे पकड़ा गया?"

वही सवारी बनने वाला बोला, "यह पीछे चिलम पर आग रखने के लिये रुक गया था। उन लोगों ने हमें तो पकड़ ही लिया था। यह भी जैसे ही भागता हुआ वहाँ पहुँचा, इसे भी पकड़ लिया।"

मैंने कहा, "अच्छा तो तुम लोगों का कोई कसूर नहीं था?"

अब सवारी बनने वाला ही सबका प्रतिनिधित्व कर रहा था। वह बोला, "हम तो पकड़ ही गए; लेकिन, बचने का यह रिक्शा वाला भी नहीं। इसके रिक्शा पर नम्बर भी तो नहीं है।"

"आप ही सोचिये, अगर हमें चोरी हो करनी होती तो हम इधर क्यों आते! हम तो रिक्शा किले के पास जमना की तरफ़ ले जाते! और, इस वक़्त तो हमारे पास पहिये खोलने के औज़ार भी नहीं थे। साहब, हमारा क्या गया! बाहर दिन भर खून पसीना एक करते थे तब जाकर मुश्किल से खाने भर को होता था; और यहाँ तो बिना काम किये मजे में खा रहे हैं!"

उस दिन रात को एक आदमी और पकड़ कर आया। वह काला कोट और एक पाजामा पहिने हुए था। थोड़ी देर तक वह खिड़की के पास खड़ा रहा और उसके बाद एक फट्टे पर बैठ गया।

मौलाना ने पूछा, "कहो भाई, तुम कैसे पकड़ कर आये?" उसने मौलाना की तरफ़ देखा और फिर चुप हो गया।

हम लोगों ने सोचा, शायद कोई ऐसा काम करके आया है कि जिसे बताना नहीं चाहता। हम लोग आपस में बात चीत करने लगे। थोड़ी देर बाद उसने खुद ही हम लोगों से पूछा, "आप साहब यहाँ कैसे आये?" मौलाना ने उससे अपना पुराना ही उत्तर 'हम कांग्रेस में हैं।' कह कर मुँह फेर लिया, मानों अब उसे उससे कुछ जानने की इच्छा ही नहीं है।

वह फिर खुद ही बोला, "बाबू जी, आप लोग तो पढ़े लिखे मालूम होते हैं! मैं तो बताते हुए शर्माता था लेकिन अब आपसे एक सलाह लेनी है। आप किसी से बताइयेगा नहीं।'

मौलाना उसकी बातों को सुनकर सिर हिलाता रहा। वह बोला, "मैं जेब कट हूँ। मैं यहीं पर फौव्वारे के सामने मनीबेग निकाल कर ट्राम से उतर ही रहा था कि साले ने मेरा हाथ पकड़ लिया। खैर, हाथ छुड़ा कर तो मैं भाग जाता, लेकिन आज कल हर ट्राम पर सिपाही चलते हैं। उसके शोर मचाते ही सिपाही ने मुझे आकर पकड़ लिया और कोतवाली में ले आया। लेकिन कोतवाली वालों को भी एक चकमा दे आया हूँ।" इतना कह कर वह ज़रा रुक गया।

मौलाना ने पूछा, "कैसा चकमा?"

वह और करीब खिसक आया और आवाज़ को धीमा करके बोला, "जब मैं पकड़ा गया, उससे पहिले मैंने एक आदमी का मनीबेग और निकाला था। उसका पुलिसवालों को पता ही नहीं था। जब ऊपर ले जाकर मुझसे सवालात पूछने लगे तो वह मनीबेग चुपके से मैंने एक अलमारी के नीचे खिसका दिया। मैंने उसे खोल कर यह भी नहीं देखा था कि उसमें कितने रुपये हैं। अब आप कोई तरकीब बताइये जिससे वह मनीबेग वापस मिल जाय।"

मौलाना ने कहा, "तरकीब क्या है! जब छूटो तो पहुँच जाना।

मौका लगे तो निकाल लेना, नहीं तो चुपके से खिसक जाना। अगर किसी दूसरे को बता दिया तो कुछ नहीं मिलेगा।"

रात के ग्यारह बजे वे एक फौज के भागे हुए सिपाही को पकड़ कर लाये। उस दिन उस कोठरी में खासी भीड़ थी। पेशाब की बदबू सारी कोठरी में फैल रही थी। उस दिन बड़ी मुश्किल से नींद आई।

× × ×

इस तरह पाँच दिन और सवालात पूछने का काम जारी रहा। वे मुझे ११ बजे ले जाते और शाम को ६-६॥ बजे बन्द कर जाते। दो तीन दिन तक जब इन सवालों का कोई नतीजा नहीं निकला तो इन्सपेक्टर एक दिन कागज लेकर लिखने बैठ गया। उसने कहा, "अच्छा इन बेकार की बातों में तो महीनों निकल जायेंगे और कोई फायदा नहीं होगा। आप जो कुछ कहेंगे उसे मैं लिखता जाता हूँ।" उसने मेरे बचपन से लिखना शुरू किया। पहिले कहाँ पढ़े? कितने भाई हैं। शादी हुई या नहीं? किस किस साल में कौन कौन सा दर्जा पास किया? इसके बाद जब आन्दोलन का भाव आया तो फिर रुकावट पड़ गई।

उसने पूछा, "अच्छा, आप यूनीवर्सिटी स्टूडेण्ट्स में काम करते थे?"

मैंने कहा, "हाँ, मैं काम करता था।"

"अच्छा आपके साथ और कौन लोग थे?"

मैंने कहा, "मैं अपने साथियों का नाम नहीं बता सकता।"

"अच्छा, आप इलाहाबाद में कहाँ कहाँ रहे?"

मैंने कहा, "देखिये, जिन लोगों ने मुझे अपने यहाँ ठहराया था, उन्होंने मेरे साथ खतरे की परवाह न करके भलाई की थी। और अब अगर मैं उनके नाम बता दूँ तो आप उनको पकड़ लेंगे। उन्हें जेल में बन्द कर देंगे या दूसरी तरह से परेशान करेंगे। क्या उनकी भलाई

का बदला मैं उन्हें इस तरह दूँ? लेकिन एक बात मैं आपसे बताये देता हूँ कि उनका सिर्फ इतना ही कसूर था, कि उन्होंने मुझे और मेरे साथियों को शरण दी। आप ही सोचिये, कैसे उनके नाम बताये जा सकते हैं।"

उस दिन इसी तरह की बहुत सी बातें उससे हुईं। पाँचवें दिन शाम को गुस्से में भर कर उसने अँग्रेजी में कहा, "मि० जगदीश, अगर तुम सीधे ढंग से नहीं बताओगे तो हम दूसरे ढंग को काम में लायेंगे।"

इसके बाद वह चुप हो गया। मुझे भी कुछ गुस्सा आ गया और मैंने भी कड़े स्वर से कहा, "आप डराते क्या हैं? अपने दूसरे ढंग भी इस्तेमाल करके देख लीजिये।"

उसने सी० आई० डी० वाले से गुस्से की आवाज में कहा, "ले जाओ, इन्हें बन्द कर आओ।"

उस दिन कोठरी में बन्द होने के बाद कुछ परेशानी हो गई थी। सोच रहा था कि अब आगे चल कर 'दूसरे ढंग' का मुकाबला करना पड़ेगा। थोड़ी देर चिन्ता मग्न रहने के बाद अपने आप से कहने लगा, खैर देखा जायगा! अब तुम्हारी भी परख हो जायगी! यह तो तुम पहले से ही जानते थे! पकड़े जाने पर इस सब के लिये तो पहिले से ही तुम तैयार थे। शारीरिक सहन-शक्ति की अब परीक्षा हो जायगी..................."

कोठरी में मैं बिलकुल अकेला था। उस दिन के सूनेपन में कुछ भय सा लगने लगा था। मौलाना सुबह चला गया था। उसने जाते वक्त एक एक रुपये के पाँच नोट मुझे देने चाहे थे। मैंने लेने से इनकार कर दिया था। फिर भी जबरदस्ती वह २ रुपये के नोट मुझे दे गया था। नोट देकर उसने कहा था, "अभी पता नहीं तुम्हें यहाँ कितने दिनों रहना पड़े। इन नोटों की शायद तुम्हें जरूरत पड़े। दो रुपयों से मैं तो ग़रीब नहीं हो जाऊँगा।" उसकी बातें सुनने के बाद

मैंने उससे नोट ले लिये और कोट के कालर की सीवन खोल कर उसी में उन्हें रख लिया था। इसके अलावा एक पत्र भी वह अपने दोस्त को लिखकर भिजवा गया था। उस पत्र में उसने लिखा था, "ये जगदीश मेरे ख़ास दोस्त हैं। इन्हें जिस चीज की जरूरत हो तुम जरूर भेजना। अगर तुमने इनका काम नहीं किया तो याद रखना तुम्हारी और मेरी दोस्ती खत्म हो जायगी।"

चलते चलते उसने कहा, "आज मेरा फैसला हो जायगा! अगर छूट गया तो तुमसे मिलने आऊँगा या खत भेजूंगा। नहीं तो समझ लेना कि जेल चला गया।" और वास्तव में १½ साल की सख़्त सज़ा देकर उसे उस दिन जेल भेज दिया गया।

उस रोज रात को मैं जल्दी सो गया। लेकिन थोड़ी देर सोने के बाद आँख खुल गई। बिलकुल सन्नाटा था। संतरी एक आध चक्कर लगा कर फिर खड़ा हो जाता था। दिमाग में बहुत सी बातें आ रहीं थीं। आन्दोलन में लोगों ने कैसी कैसी तकलीफें उठाईं, उन सबकी तस्वीर आँखों के सामने आने लगीं। बलिया से एक लड़का लौट कर आया था, उसने अपनी आँखों देखी बातें बताई थीं। वहाँ पर लोगों को कोतवाली में अमरूद के पेड़ों पर चढ़ने का हुक्म दिया गया और तने पर चढ़ने के बाद उनसे कहा गया कि वहीं पर रुके रहें। पेड़ चिकना था। जब कोई आदमी नीचे को खिसकता तो उसके चूतड़ों में पुलिस और फौज वाले संगीनें चुभाते। आखिर, हाथ बेकाम हो जाते थे और वे नीचे गिर पड़ते।

उसने यह भी बताया था कि इसके बाद लोगों को कोतवाली में मुर्गा बनने को कहा जाता और जब वे मुर्गा बन जाते तो मार्शस्मिथ पीछे से दौड़ता हुआ आता और जिस तरह से फुटबाल का खिलाड़ी फुटबाल को ठोकर मारता है उसी तरह वह उनके अण्डकोषों पर अपने बूट का प्रहार करता था। ऐसी बहुत सी बातें बहुत से लोगों ने बताई थीं। यह सब कुछ लोगों ने सहा है।

इतना ही नहीं; लड़कियों तक को भी इन नर पिशाचों ने नहीं छोड़ा। फीरोजपुर जेल से छूट कर आई हुई एक लड़की ने बताया था कि जेल में राजबन्दिनियों को बाल पकड़ पकड़ कर घसीटा जाता था। इस तरह घसीटे जाने से उनके सारे कपड़े फट जाते और वे नग्न हो जातीं, फिर भी उनको घसीटना जारी रहता था। इस तरह घसीटे जाने के कारण एक लड़की की पूरी चोटी तक उखड़ गई थी।

यह सब ज्यादा तर हिन्दुस्तानियों ने ही किया था, अपने ही भाइयों के ख़िलाफ़। बलिया का एक सिपाही इलाहाबाद में था। वह भी गोली और लाठी चलाता था और, जब बलिया के गाँव फूंके गये तो उसका घर भी जला दिया गया, उसके लड़के को मारा गया, और उसकी औरत को बे घर की कर दिया गया। वह कपड़े और दाने दाने को मोहताज़ हो गयी!

ऐसी ही बहुत सी बातें दिमाग़ में आती रहीं, सब की सब बिलकुल क्रम हीन थीं। उनका प्रारम्भ और अंत दोनों का ही पता नहीं था। कब क्या सोचता था और फिर कहाँ जा कर विषय का अंत होता था, कुछ मालूम ही नहीं हो पाता था। इसी तरह सोचते सोचते नींद आगई।

× × ×

दूसरे दिन मैं सुबह से ही अपने में साहस भरकर तैयार हो गया। खाना खाने के बाद कोठरी में टहलता रहा। मन नहीं लग रहा था, इसलिये खिड़की पर आकर बैठ गया। संतरी बाहर खड़ा हुआ एक दूसरे सिपाही से बात कर रहा था। सामने देखते हुए वह अपने साथी से बोला, 'अबे, देख! माशूका आ रही है।" मैंने भी देखने का प्रयत्न किया, लेकिन जंगले से कुछ दिखाई नहीं पड़ा। कुछ ही क्षण बाद मेहतर की १३ साल की लड़की हरी सलवार और काला दुपट्टा ओढ़े, हाथ में रोटी की टोकरी लिये हुए आती दिखाई पड़ी। जब वह करीब आई तो एक 'सी.....' की आवाज़ करके

संतरी ने उसकी तरफ़ देखकर आँख मार दी। वह लड़की गुस्से में होठ दबाकर सिर नीचा किये हुए वहाँ से चली गई। उसके बाद संतरी बोला, "देखा, कैसी कातिल है?" उसके साथी ने कहा, "अभी बच्चा है!" उसके प्रत्युत्तर में संतरी ने कहा, 'बच्ची नहीं है। अबे! यह हज़ारों को कत्ल कर चुकी है। देखा, कैसी कटीली आँखें हैं..........।' ऐसी ही बहुत सी असभ्य बातें वह करता रहा।

मन बिलकुल नहीं लग रहा था। खिड़की पर बैठा हुआ कोतवाली में आने जाने वाले व्यक्तियों को ध्यान रहित सा देख रहा था। १२ बजने वाले थे लेकिन मुझे कोई भी बुलाने नहीं आया। करीब १२ बजे के एक मोटर आकर रुकी। उसमें सिपाही भरे हुए थे और उनके बीच में दो चार व्यक्ति सफ़ेद कपड़े पहिने हुए थे। वह इन्सपेक्टर भी इस गाड़ी की अगली सीट पर बैठा हुआ था। उसने जमादार को आवाज़ दी और उसके आजाने पर पूछा, "यहाँ कोई कोठरी खाली है?"

जमादार ने कहा, 'जी हाँ'; तीसरे नम्बर की कोठरी खाली है। और इसके बाद एक आदमी को उन्होंने मोटर से उतारा, दो तीन सिपाही साथ में थे। जमादार ने मेरी कोठरी से अगली कोठरी का दरवाज़ा खोला और उसी कोठरी में उस व्यक्ति को बंद कर दिया। लौटते वक्त वह इन्सपेक्टर मेरी कोठरी के सामने से ही गुज़रा लेकिन उसने मेरी तरफ़ देखा तक नहीं।

दिन भर मैं इन्तज़ार करता रहा लेकिन कोई बुलाने नहीं आया। मैंने सोचा कि शायद आज यह इन्सपेक्टर पकड़ धकड़ में मशगूल था, इसीलिये मुझे नहीं बुलाया गया। रातको हम लोगों ने नये आये हुए साथी से उनका नाम वगैरह पूछा। वे आन्दोलन में विशेष रूपसे क्रियाशील नहीं थे, किन्तु कुछ व्यक्तियों को उन्होंने अपने यहाँ आश्रय दिया था और किसी पकड़े गये

व्यक्ति ने उनका नाम बता दिया था। उसी के आधार पर उनको भी पकड़ लिया गया था। उनका नाम वेदपाल सरना था। उनके यहाँ डेरी थी। उन्होंने बताया कि कोई व्यक्ति पकड़ा गया है। वह सब लोगों के नाम बता रहा है। शहर में कई जगह पर पुलिस ने रेड किया है और कितने ही व्यक्ति पकड़े गये हैं। लेकिन वह कौन व्यक्ति है इसे वे अभी तक नहीं जान पाये हैं।

यह सब किस्सा बताते हुए वे बोले, 'क्या बतायें, हमें तो यही अफ़सोस रहा कि कुछ कर भी न पाये और पकड़े गये। अगर कुछ करके आते तो दुःख तो न होता। यह तो खुशी होती कि कुछ करके आये हैं।

मैंने कहा, "दुःख तो उन लोगों के लिये है जो अपने साथियों के नाम बताते हैं। वे देशद्रोही और विश्वासघाती दोनों हैं।"

अगर हमारे साथी हमें न पकड़वाते तो पुलिसवाले सात जनम तक न पकड़ पाते। हिन्दुस्तान की उस समय की हालत देखने लायक थी। हर तीसरा हिन्दुस्तानी गद्दार था। गुलामी का ज़हर समाज के शरीर के अंग अंग में फैल गया था। एक तरफ़ लोगों पर गोलियाँ चलाई जा रही थीं, उनके घरों को बिस्मार किया जा रहा था, उनकी माँ और बहिनों की इज्ज़त लूटी जा रही थी और दूसरी तरफ़, जी हुजूर लोग लड़ाई में सरकार की मदद कर रहे थे।

भाई भाई में इस तरह का विरोध और अन्तर समाज ने पहिले शायद ही कभी देखा हो। उस समय का हिन्दुस्तान दो भागों में बंट गया था। कुछ अँग्रेज़ों के साथ थे और कुछ हमारे साथ। लेकिन, जैसे जैसे आंदोलन का दमन होता गया, उनका पलड़ा भारी होता चला गया। निर्बल स्त्री के समान जनता उनके साथ होगई और उसके बाद तो हिन्दुस्तान की दशा ही बदल गई थी। जिन लोगों ने जनता को कुचलने में हैवानियत का कोई भी ढंग उठा

नहीं रखा था, उन्हीं को जनता ने उपहार भेंट किये, उनके गलों में फूल-मालायें डाली गईं और उनकी जय-जयकार से सारे वातावरण को गुँजायमान कर दिया गया ! उन्हें सोने चांदी और हीरों से तोला गया ! देख कर विस्मय होता था कि कैसे इतने थोड़े समय में लोग पिछला सब कुछ भूल गये ? कैसे लोग इतनी जल्दी बदल गये ? क्या दुनिया का प्रत्येक देश और प्रत्येक राष्ट्र ऐसी परिस्थितियों में ऐसा ही करता है ? ये समझ में न आने वाली ऐसी विचित्र बातें थीं जिनका उत्तर खोजे नहीं मिलता था।

× × ×

इसके पश्चात् आठ दस दिन मैं उस हवालात में रहा लेकिन फिर मुझे कोई बुलाने नहीं आया। पास वाले व्यक्ति से भी वे लोग मिलने नहीं आये। उसके कपड़े भी नहीं आये थे। अपना ऊनी सूट पहिन कर ही वह रात को सोता था। परिणाम यह हुआ कि वह बीमार पड़ गया। उसकी नाक से खून गिरने लगा, फिर भी कोई उसे देखने तक नहीं आया।

इस बीच में वहाँ पर बहुत से कैदी आये और गये । एक दिन वे लोग एक पठान को पकड़ लाये। उसका शरीर दुबला था लेकिन, था खूब गठीला। बन्द होने के बाद पता लगा कि वह पागल है। जमा मसजिद के सामने वह कागजों और फटे चीथड़ों का ढेर लगाये पड़ा रहता था। उसके पास कोई व्यक्ति साइकिल के कुछ हिस्से चुरा कर रख गया था। इसी जुर्म में उसे पकड़ कर लाया गया था। वह कमरे में टहल टहल कर पश्तो भाषा में चिल्ला कर कुछ कहता था। उसके कहने के ढंग से मालूम पड़ता था कि मानों वह भीड़ में खड़ा हुआ कोई भावनापूर्ण भाषण दे रहा हो।

कोठरी में आने के बाद उसने एक फट्टा उठाया और फटे हुए कम्बलों के ढेर में से उसने कुछ कम्बलों के चिथड़े उठाये और उन्हें

ओढ़ कर लेट गया। रात को वह सारे शरीर को खुजलाता रहा। नीचे से खटमल काट रहे थे और ऊपर से जूँ खून चूस रही थीं।

रात का समय भी अब कटना मुश्किल होगया था। जितनी बातें हम लोगों को करनी थीं, समाप्त होगई थीं। एक एक बात को कई कई बार दोहराया जा चुका था। दो तीन दिन के बाद श्यामलाल ने कहा, "आप हम को भारतीय दर्शन का इतिहास बताइये। आपने तो इसका काफी अध्ययन किया है।"

उसके बाद रात को एक डेढ़ घण्टे बैठ कर मैं उसको भारतीय दर्शन का इतिहास सुनाता था। पहिले दिन ऋग्वेद से आरम्भ करके अरण्य काल तक समाप्त किया, इसके पश्चात्, फिर बौद्ध धर्म, जैन धर्म और वासुदेव सुधारों का अलग अलग वर्णन किया। उन दिनों बाहर पहरा देने वाला सन्तरी वही हिन्दू था जिससे कुछ दिनों पहिले नहाने के प्रश्न पर झगड़ा हो चुका था। वह बड़े ध्यान से उस इतिहास को सुनता और बीच बीच में प्रश्न भी करता जाता जिसका मैं उत्तर उसे देता। जब मैं इतिहास समाप्त करता तो उसके थोड़ी ही देर बाद उसकी ड्यूटी बदलती थी। वह जाकर बाजार से प्रसाद लाता और वहाँ सब लोगों को थोड़ा थोड़ा देता। अब उसका सारा संशय नष्ट हो चुका था। मुझसे अपने धर्म की बातें विस्तार पूर्वक सुनने के बाद वह मौलाना के साथ खाना खाने वाली बात को बिलकुल भूल गया था।

इस तरह बड़ी मुश्किल से दिन कटता था । कभी कभी कोठरी में बड़ी भीड़ होजाती और उसके साथ पेशाब की बदबू भी बढ़ जाती। बहुत से लोग अलग अलग जुर्म में पकड़ कर आते । इसी तरह एक दिन एक आदमी आया जो उसी समय खून करके आया था। उसके सारे कपड़ों में खून के दाग पड़े हुए थे। कोठरी में बन्द होने के बाद वह बेचैनी की हालत में इधर उधर घूमता रहा। इसके बाद खिड़की पर आकर खड़ा होगया। उस दिन कोठरी में कोई और नहीं था। वह मुसलमान था और उसकी उम्र २६ वर्ष की होगी। उसका शरीर

पतला था। थोड़ी देर बाद मैंने उससे पूछा, "कहिये, आपको क्यों और कैसे पकड़ा ? क्या आपकी किसी से दुश्मनी थी ?"

वह पहिले कुछ देर तक मेरी तरफ घूर कर देखता रहा जैसे उसने कुछ ठीक से बात न समझी हो। फिर, वह जरा गर्दन को एक झटका देकर कहने लगा, "वह साला मेरा भाई ही था; लेकिन मैंने उसे छुरा भोंक ही दिया, वह मरा नहीं....उसे ये लोग अस्पताल लेगये हैं.... दुश्मनी क्या ? बस, मैंने मार दिया....भाई था तो क्या ?" इसी प्रकार क्रम रहित बातें वह करता रहा। उसकी बातों का कुछ ठीक ठीक अर्थ मैं न निकाल सका।

जब उसका खाना आया तो पहिले तो उसने खाना लाने वाले से कह दिया, "मैं खाना नहीं खाऊँगा।" फिर कुछ सोचकर बोला, "अच्छा; ले आओ"। जब वह खाना खाने बैठा तब भी सामने की तरफ विचारहीन सा देख रहा था। खाना रखकर पहिले तो वह कुछ देर बैठा रहा, उसके बाद जब उसने खाना शुरू किया तो बड़ी जल्दी दो रोटी खाकर उठ गया और फिर कमरे में टहलने लगा। उसके व्यवहार से ज्ञात होता था कि वह बहुत उद्विग्न है। दो घण्टे बाद पुलिस वाले उसको निकाल कर ले गये। उसके बाद वह दिखाई नहीं पड़ा।

इसी तरह और भी बहुत से लोग आये। ज्यादातर उनमें फौज के भगोड़े सिपाही होते थे। एक दिन एक व्यक्ति आया जो अफीम और कोकीन का व्यापार करता था। वह पञ्जाब से कलकत्ता, बम्बई और सिंगापुर तक कोकीन लेजाता था। उसने बताया कि उसके पास लकड़ी का दो तली वाला एक बक्स है; उसी में वह ऐसा सामान रख कर ताला लगा देता है और ऊपर से कपड़ों को इत्र लगाकर रख देता है। वह अबकी सातवीं बार पकड़ा गया था। लेकिन वह चिन्ता-विहीन था। कहता था, "हमें ये लोग दो-तीन या चार महीने से ज्यादा नहीं रखते। जब छूट कर जाते हैं तो इतना रुपया जमा कर

घर रख आते हैं कि ७ महीने तक कोई चिंता न करनी पड़े।" उसके और भी कई साथी थे।

एक दिन फौज का एक भगोड़ा आया। उसकी उम्र लगभग १४ साल की होगी लेकिन वह बहुत छोटे कद का और पतला दुबला, था इस कारण उसकी उम्र और भी कम लगती थी! उसको फौज के साथ ब्रह्मा भेजा गया था। जब रंगून पर बमवर्षा होने लगी तो वह वहाँ से भाग निकला। गिरफ्तारी के समय वह अपने रिश्तेदारों के पास छिपकर रह रहा था। वह देखने में भी बड़ा बेवकूफ सा लगता था। उसे देखकर कोई सोच ही नहीं सकता था कि ऐसे आदमी फौज में क्या कर सकते हैं। उसके आने की खबर जब कोतवाली के सिपाहियों को हुई तो वे अपने साथियों को बुलाकर उसे दिखाते और गुजरने वाले सिपाही को रोक कर कहते, "ओ, सरदार आ! तुझे एक फौज का जवान दिखा दें। उसके ये ये सीने हैं!" उसको देखकर उनको बड़ा विस्मय होरहा था।

इस भाँति कभी कोई डाकू आता और कभी कोई शराबी। उस दिन ६ तारीख थी। ६ तारीख को आन्दोलन का प्रारम्भ दिवस मान कर हम लोग मनाया करते थे। उस दिन आशा थी कि कुछ न कुछ अवश्य ही होगा। शाम को करीब तीन बजे श्यामलाल ने मुझे आवाज दी। जब खिड़की पर पहुँचा तो वह बोला, "देखो, अभी एक लारी आई है; उसमें तीन औरतें पकड़ कर लाई गई हैं। उनमें से एक के पास बच्चा भी है।"

मैं अपनी खिड़की पर चढ़ गया और सामने की दीवार के ऊपर से देखने लगा। लारी थोड़ा आगे बढ़ने के बाद रुक गई। उसमें से बहुत से सिपाही, इन्स्पेक्टर और वे तीन स्त्रियाँ निकलीं और दफ्तर की ओर चलीं। मैंने श्यामलाल से कहा, "उनको वे लोग दफ्तर में क्यों ले गये हैं ?"

श्यामलाल ने कहा, "यहीं पर कोर्ट होता है। स्पेशल मजिस्ट्रेट

के सामने उनको लेजाया जायगा और वह जितने दिनों की सजा देगा उतने दिनों की सजा करके उन्हें जेल भेज दिया जायगा। सम्भव है वारन्ट बनवाने के लिये ही लेगये हों। जब ये लोग लौटेंगे तब तुम देखना।"

मैंने कहा, "श्यामलाल, ये लोग घबड़ा रही होंगी। देखो, जब इनकी लारी निकले तब हम लोग नारे लगा कर इन्हें प्रोत्साहित करेंगे।"

श्यामलाल ने कहा, "नहीं, यह कोतवाली है ऐसा मत करना। यह बड़ी ग़लत चीज होगी।"

मैंने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। थोड़ी थोड़ी देर बाद खिड़की पर चढ़ कर देख लेता कि अभी वे लोग चलीं तो नहीं। इतने में श्यामलाल ने कहा, "देखो, वे स्त्रियाँ अब वापस होरही हैं।"

मैंने खिड़की पर चढ़ कर देखा कि सब सिपाही और वे स्त्रियाँ फिर से लारी में बैठ गईं। लारी की खिड़कियों के पास तिरङ्गा झण्डा बँधा हुआ था। शायद इन तीनों स्त्रियों ने आज के दिन झण्डा लेकर सत्याग्रह किया था और सिपाहियों ने उनका झण्डा छीन कर मोटर में खिड़की के पास लपेट कर बाँध दिया था। कोतवाली से दरवाजे की ओर को बहुत ढाल था। ड्राइवर ने मोटर का इञ्जिन बन्द कर दिया था और मोटर बिना आवाज के चल रही थी। जब मोटर हमारी कोठरियों के सामने वाले बरामदे के कोने पर आई तो मैंने ज़ोर की आवाज़ में नारा लगाया, "इनकलाब" उधर से उसका प्रत्युत्तर आया "ज़िन्दाबाद"। धीरे धीरे मोटर फाटक के बाहर हो गई। मैं अपनी खिड़की की सलाख पकड़े खड़ा हुआ था।

आवाज सुन कर एक इन्सपेक्टर वहाँ आया। बाहर से गुस्से की आवाज में उसने कहा, "कहाँ चढ़ा खड़ा है, नीचे उतर।" मैं नीचे उतर आया। उसने मुझे गालियाँ दीं। मुझे भी गुस्सा आ गया। पैर की चप्पल हाथ में लेकर मैंने कहा "क्या बकता है बे! मारे चप्पलों

के ठीक कर दूँगा। तूने क्या डाकू समझा है। हम लोग राजनैतिक कैदी हैं। तूने गाली कैसे दी?"

पता नहीं गाली देने के बाद अपराधी अन्तःकरण के कारण या अन्य किसी कारण से वह और कुछ न बोल सका और वहाँ से धीरे धीरे चला गया। मैं भी कोठरी में टहलने लगा। क्रोध और उत्तेजना धीरे धीरे ढल रही थी और चिंता बढ़ कर शारीरिक क्रियाओं को शिथिल करने लगी थी।

उसी दिन शाम को चार पाँच सिपाही और एक दूसरा थानेदार मुझे लेने आ गया। पहिले तो मैंने समझा कि यह अपना बदला लेने आये हैं। लेकिन कोठरी से निकलने के पहिले जब जमादार ने कहा, "आप अपना बिस्तर भी बाँध लीजिये, आज आपकी रवानगी है।" तब मुझे यकीन हुआ कि या तो मुझे जेल भेजा जा रहा है या कहीं बाहर।

दफ्तर में पहुँचने पर थानेदार ने मेरे नाम का चालान बनवाया। मैंने थानेदार से पूछा, "कहाँ चल रहे हैं?"

उसने कहा, "आपको यू० पी० जाना होगा।"

मैंने पूछा, "क्या इलाहाबाद?"

मेरी ओर ध्यान न देते हुए तथा अपने कागजों को सँभालते हुए उसने उत्तर दिया, "हाँ।"

× × ×

एक ताँगे में बैठ कर हम लोग दिल्ली के स्टेशन पर पहुँच गये। मेरे दोनों हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हुई थीं। दारोगा अपनी रिवालवर और कारतूसों की पेटी के साथ था। दो सिपाही राइफिल लिये हुए दोनों तरफ बैठे हुए थे। चलने से पहिले मैंने सोच रखा था कि अगर ये लोग स्टेशन मुझे पैदल ले जायँगे तो रास्ते भर नारे लगाता हुआ जाऊँगा।

स्टेशन पहुँचने पर मैंने देखा कि रास्ते के पास, वे दोनों, सी०

आई॰ डी॰ वाले, जिन्होंने पहिले दिन, रात को मुझे जगाया था, खड़े हैं। एक काला कोट वाला था और दूसरा कम उम्रवाला, बातूनी जिसने उस दिन रात को बहुत देर तक परेशान किया था। कम उम्र वाले ने मुझे देख कर काले कोटवाले से व्यंग पूर्वक कहा, "देख, साहब आ रहा है।"

उसके शब्द मुझे भी सुनाई पड़ गये। मैंने कहा, "कहो, मिस्टर सी॰ आई॰ डी॰ यहाँ भी किसी को फाँसने के लिये चोला बदले खड़े हो!" जो लोग मुझे देख रहे थे वे उन दोनों को देखने लगे। पास के लोग उनके पास से जरा से हट गये और लोगों की आँख बचा कर वे दोनों भी वहाँ से खिसक गये।

पंजाब को जानेवाली गाड़ी खूब ठसाठस भरी खड़ी थी। प्लेट-फार्म पर गाड़ी छूटने से पहिले काफी भीड़ जमा थी। सिपाही ने हथकड़ी का एक छोर अपनी पेटी में डाल लिया था। दारोगा आगे आगे चल रहा था और दूसरा सिपाही राइफल लिये पीछे आ रहा था। लगभग एक महीने बाद फिर से मैं खुले वातावरण में था। मन में आया कि जाने अब कितने सालों के लिये फिर से जेल में बन्द कर दिया जाऊँगा। पता नहीं कि कब बाहर की हलचल देखने का मौका मिलेगा! मस्तिष्क में विद्युत की जैसी एक लहर उठी और हथकड़ियों में बँधे हुए दोनों हाथों को उठा कर मैंने जोर से नारा लगाया, "आजाद हिन्द जिन्दाबाद।"

सब लोग मेरी तरफ देखने लगे, पास में सन्नाटा सा छा गया था। इन्सपेक्टर की गति में थोड़ा परिवर्तन हो गया। सब लोगों के दृष्टि प्रहार का अनुभव करता हुआ वह गम्भीर मुद्रा से चल रहा था। भीड़ में से किसी ने कहा, "वाह भाई, वाह।"

तूफान एक्सप्रेस के तीसरे दर्जे में बीच वाली सीट दारोगा ने खाली करा ली। उसी सीट पर उसने मुझसे बैठने के लिये कहा। दोनों सिपाही मेरे अगल बगल बैठ गये। एक आदमी ने मेरे पास से गुजरने

की कोशिश की। इन्सपेक्टर ने उसे रोक कर कहा, "इधर से नहीं, इस दरवाजे से जाइये।"

उस डिब्बे में कुछ और व्यक्ति पहिले से बैठे हुये थे जिनको इन्सपेक्टर जानता था। उनमें से ही एक व्यक्ति ने इंसपेक्टर को डिब्बा दिखाकर कहा था कि हम लोग इसी में चल रहे हैं। उनके साथ में दो कम उम्र की लड़कियां थीं। उन्होंने इंसपेक्टर साहब को सलाम किया। उनमें से एक ने इन्सपेक्टर को सिगरेट दी और एक सिगरेट निकाल कर खुद पीने लगी। इंस्पेक्टर वहीं खड़ा हो गया। फिर अपने पानदान में से एक पान इंसपेक्टर को देते हुए उसने कुछ चुपके से पूछा। इंस्पेक्टर ने मेरी तरफ़ दिखाकर धीरे से उसके कान में कुछ कहा।

इसके बाद, उस डिब्बे के एक कोने में खड़े होकर उसने अपना रिवालवर निकाला और पेटी में से कारतूस निकालकर उसे भरा। रिवालवर को पेटी में लगाकर वह मेरे पास आया और कुछ शर्माते हुए बोला, "आप समझते होंगे कि इन रंडियों से मेरा ताल्लुक है। ऐसी कोई बात नहीं है लेकिन मैं इनको बहुत मानता हूँ। एक दफ़ा मैं बीमार पड़ गया था, घर पर कोई नहीं था, तब इसने"—उनमें से एक की ओर इशारा करते हुए—"मेरी बड़ी खातिर की थी। आप ही बताइये, कैसे कोई एहसान फ़रामोश हो सकता है?"

मैंने कहा, "नहीं, इसमें क्या हर्ज है। अगर कोई ख़राब है भी तो इससे हमें क्या? हमें तो यही देखना चाहिये कि हमारे साथ वह कैसा है? दुनियाँ में हर एक के लिये, हर एक अच्छा हो भी तो नहीं सकता।"

गाड़ी के चलने के समय सी॰ आई॰ डी॰ का अफ़सर खिड़की पर दिखाई पड़ा। खिड़की में सिर करके उसने मुझे संबोधित करते हुए अँग्रेज़ी में कहा, 'मि॰ जगदीश! तुम्हें कोई तकलीफ़ तो नहीं?"

सिपाही और इंसपेक्टर उठकर खड़े होगये थे। गाड़ी ने सीटी दे दी थी। आख़िर में वह बोला, 'अगर तुम्हें किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो इंसपेक्टर से कह देना।" मैंने अंग्रेजी में उसे धन्यवाद देकर कहा "मुझे कोई ज़रूरत नहीं पड़ेगी।" गाड़ी धीरे धीरे चल पड़ी। दारोगा उठकर उन वेश्याओं के पास चला गया। रातभर वह उन लोगों से बैठा हुआ बात करता रहा।

सुबह को जब गाड़ी कानपुर पहुँची तो वे सब लोग सामान उतारने की तैयारी करने लगे। मैंने दारोग़ा से कहा, 'आप यहाँ क्यों उतर रहे हैं, गाड़ी तो सीधी इलाहाबाद जाती है।"

उसने अपना सामान ठीक करते हुए कहा, "हमें इलाहाबाद नहीं, लखनऊ जाना है।" लखनऊ की गाड़ी के लिये हमें स्टेशन पर इन्तज़ार करना पड़ा। चारों तरफ़ आदमी दूर से खड़े हुए हमारी तरफ़ देख रहे थे। किन्तु किसी की भी करीब आने की हिम्मत नहीं पड़ती थी।

११ बजे के करीब गाड़ी लखनऊ स्टेशन पर पहुंच गई। वे वेश्यायें भी वहीं पर उतरीं। इंसपेक्टर ने उनसे शाम को आने का वादा किया और फिर एक ताँगे में मुझे बैठा कर वह कचहरी की तरफ़ चल पड़ा। पंजाब की और दिल्ली की पुलिस की वर्दी यू० पी० वालों से भिन्न होती है, फिर वहाँ के सिपाही भी यू० पी० वालों से कद में लम्बे होते हैं। ऐसे दो सिपाहियों और इंसपेक्टर के साथ देख कर लोग कुछ समझ नहीं पाते थे कि मैं कौन हूँ, और कहाँ से आया हूँ?

कचहरी पर पहुँचने पर ताँगे के चारों तरफ़ खासी भीड़ जमा हो गई थी। दारोगा उतर कर मजिस्ट्रेट के पास चला गया था। साइकिल हाथ में लिये हुए एक लड़के ने आगे बढ़कर मेरे बारे में पूछा। मैंने संक्षिप्त में उसे अपना परिचय देते हुए कहा, "मुझे दिल्ली में गिरफ्तार किया गया है। मैं इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में रिसर्च स्कालर था।'

इसके बाद भीड़ को हटाते हुए उसने अपनी साइकिल निकाली और तेजी से चला गया। करीब पाँच मिनट बाद ही वह लौट आया और फिर से भीड़ को हटकर वह सबसे आगे आ गया। रूमाल को आगे बढ़ाते हुए उसने कहा, 'लीजिए आपके लिये कुछ संतरे लाया हूँ।"

मुझे संतरा देते सपाही ने उसे रोकते हुए कहा 'नह साहब आप इनको कुछ न दीजिये।' वह लड़का निष्प्रभ होगया। संतरे उस लड़के से लेते हुए मैंने कहा "इसमें क्या हर्ज है? खाने की चीजों की कोई मनाही नहीं होती।" उसके बाद मैंने उसका परिचय पूछा। अँग्रेज़ी में उसने कहा, "आप मेरे बारे में इस समय मत पूछिये। बस, इतना जान लीजिये कि मैं भी आपमें से एक हूँ।" इतना कहने के बाद वह वहाँ से भीड़ में से होता हुआ बड़ी तेज़ी से साइकिल चलाता हुआ आँखों से ओझल हो गया।

इंसपेक्टर आकर मुझे भी अपने साथ लेगया, शायद मुझे देकर वह अपना चार्ज खत्म करना चाहता था। मोहर लगा हुआ लिफ़ाफ़ा जो वह अपने साथ लाया था उसने मजिस्ट्रेट को दिया। उस लिफ़ाफ़े के काग़ज़ों को पढ़ने के बाद मजिस्ट्रेट ने कहा, 'इन काग़ज़ों में यह तो लिखा ही नहीं है कि इनको क्यों पकड़ा गया; हम कैसे इन्हें अपने यहाँ कैद रख सकते हैं? आप इनका वापस ले जाइये; जब तक पूरे काग़ज़ नहीं होंगे, तब तक हम जिम्मेदारी नहीं ले सकते।"

मजिस्ट्रेट की बातें सुनकर इन्सपेक्टर ज़रा परेशान हो गया। वह कहने लगा, 'साहब यह लिफ़ाफ़ा तो खुद वहाँ के पुलिस सुपरिन्टेन्डेंट ने बन्द करके दिया है; इसकी ज़िम्मेदारी मुझ पर कैसे हो सकती है? बताइये, अब मैं फिर इन्हें दिल्ली वापिस ले जाऊँ?"

मजिस्ट्रेट ने मुझसे पूछा, 'आपको क्यों गिरफ्तार किया गया?'

मैंने कहा, 'मैं नहीं जानता, यह तो आप लोग ही जानते होंगे कि क्यों बिना सबूत और कसूर के लोगों को गिरफ्तार किया जाता है ?'

इसके बाद उसने अपने क्लर्क को बुलाकर कहा, 'अच्छा जेल का एक वारण्ट बनाकर इन्हें जेल भेज दो और इन्सपेक्टर साहब, आप जल्दी काग़ज़ वहाँ से भिजवा दीजियेगा।'

इसके बाद तांगे में बैठकर बहुत लम्बा रास्ता तय करके हम लोग सेन्ट्रल जेल लखनऊ के फाटक पर पहुँच गये। बड़े दरवाजे की एक खिड़की से हम लोग जेल के भीतर गये।

दरवाजे के पास ही एक आफ़िस में जाकर इन्सपेक्टर ने कुछ लिखा पढ़ी की। उसके बाद पीले कपड़े पहिने हुए जेल का नम्बरदार मेरा बिस्तर एक दूसरे दफ्तर में ले गया। वहाँ सारे कपड़ों की और मेरी जामा तलाशी ली गई; लेकिन कोई चीज़ नहीं मिली। मौलाना के दिये हुए दो रुपये के नोट कोट के कड़े कालर में बिलकुल छिप गये थे।

अध्याय—४

शहीदों के खून से सिंचित,
सुख दुख की वायु से प्रणित,
स्वतंत्रता के बीज से पैदा,
तिरंगे की छाया में
माँ! प्रण करते हैं।

कई फाटक पार करने के बाद एक लम्बे और टेढ़े-मेढ़े रास्ते से होते हुए हम लोग उन बारिकों में पहुँच गये जहाँ पर अन्य राजनीतिक कैदी बंद थे। एक लम्बी सी बारिक में मेरा बिस्तर रखकर जेलका नम्बरदार चला गया। एक नये व्यक्ति को देखकर सब लोग मेरे चारों तरफ़ आकर इकट्ठा हो गये। उनमें से कुछ मेरे पूर्व परिचित थे, किन्तु अधिकांश चेहरे बिलकुल नये थे।

मैं मिट्टी के एक चूले पर बैठ गया। उनमें से कुछ लोग पास में बैठे थे और बाकी चारों ओर घेरे खड़े थे। एक दो सज्जनों ने जो मुझे पहले से जानते थे मेरा परिचय औरों को दिया। इसके बाद प्रश्नों की झड़ी लग गई। कोई पूछता, 'तुम कैसे पकड़े गये ?' कोई जानना चाहता, 'अब, बाहर जो लोग बचे हैं वे क्या करने की सोच रहे हैं ?" कोई पूछता, 'तुमने अखबार देखा था ? लड़ाई की क्या खबरें हैं ?"

सन् ४२ में जेल में बंद होने के बाद राजनीतिक कैदियों का बाहरी संसार से संपर्क बिलकुल कट जाता था। उनको किताब, अख़बार, लिखने पढ़ने की सामग्री इत्यादि का मिलना रोक दिया

गया था। किसी प्रकार भी बाहरी दुनियाँ की कोई ख़बर उन लोगों तक न पहुँच पाये, ऐसा उपाय ब्रिटिश हुकूमत ने किया था। बाहर से आने वाला नया बंदी ही उनके लिये बाहरी दुनियाँ का संवाद लाने का एक मात्र साधन था। इसलिये एक बंदी के आने के बाद के खाली दिनों में दुनियाँ में क्या हुआ, विश्वव्यापी भयंकर युद्ध में कितने राष्ट्र जल कर आस्तित्व विहीन हो गये, अपने देश में कितने गाँव जलाकर ख़ाक कर दिये गये, कितने व्यक्तियों को गोली का शिकार बनाया गया, कितने और साथियों को पकड़कर हवालात और जेल की अंधेरी कोठरियों में बंद कर दिया गया, इन सब आवश्यक और महत्वपूर्ण खबरों का पता दूसरे नये आये हुए बंदी से ही कुछ लग पाता था।

उस सर्किल में चार बारीकें थीं। उनमें से एक बारिक में मुझे भी एक दूला दे दिया गया। यह दूला मिट्टी का या ईंटों का बना होता है। ६ फीट लम्बा और करीब २½ फीट चौड़ा। जेल से एक फट्टा, दो कम्बल और पहिनने के कुछ कपड़े मिल गये थे।

जब मैं उन लोगों को आँदोलन और अपने साथियों के विषय में बता रहा था उसी समय एक परिचित मुझे वहाँ से उठाकर ले गया। बाहर जाकर उसने कहा, 'यहाँ पर आप सब बातें इस तरह मत बताइये। यहाँ की सब खबरें उन लोगों तक पहुँच जाती हैं। हममें से भी कुछ लोग उनसे मिले हुए हैं। यह तो पता नहीं कौन हैं, लेकिन शक कुछ लोगों पर ज़रूर है। आपको खुद ही मालूम हो जायगा।'

इस जेल में प्राँत के प्रायः हर ज़िले के लोग मौजूद थे। बी० क्लास में उस समय लगभग १०० बंदी थे। इसके अतिरिक्त सी० क्लास में राजनीतिक बंदियों की संख्या लगभग ५०० के थी। सी० क्लास में अधिकतर लोगों को सज़ा देकर बंद किया गया था। स्पेशल कोर्ट द्वारा उनके मुकदमों का झटपट फैसला करके लम्बी लम्बी

कड़ी सजायें देकर उनको जेल में डाल दिया गया था। उनमें से कुछ लोगों की सजा ६६ और ७० साल तक की थी।

जेल की दीवार के सहारे घूमते हुए अन्य साथियों से बातें होती रहीं। उन लोगों ने भी अपनी आत्म कहानी सुनाई। उनमें से बहुत से लोग मुझसे पहिले हवालात में दो दो महीने बिता चुके थे। उनमें से कुछ को कई रात जागना पड़ा था, कुछ लोगों पर डंडे पड़े थे।

उनमें से कई साथी दिल्ली के लाल किले में रखे गये थे। उन्होंने बताया कि किले की काल कोठरियाँ नीचे जाकर एक बावली में थीं। इन कोठरियों में बड़ी सीलन रहती थी। दिन में भी उनमें अंधकार रहता था। वहाँ पर जूँ और खटमल के अलावा सीलन में रहने वाले बिच्छू तथा अन्य बहुत से कीड़े भी थे जो बंदियों को सताने में ब्रिटिश सरकार की पूरी मदद करते थे। उन कोठरियों में रहने के कारण उन लोगों के शरीर तक में जूँ पड़ गई थीं। रंग बिलकुल पीला हो गया था। हजामत न बनने के कारण मूँछ दाढ़ी खूब बढ़ गई थी। अगुलियों के नाखून बढ़कर जंगलियों जैसे हो गये थे। और जब वे उन कोठरियों से निकाले गये तो यातनाओं और मानसिक चिंता ने उनके बाहरी रूप रंग के अतिरिक्त आँतरिक मनोवृति में भी अमिट परिवर्तन उत्पन्न कर दिया था। उन यातनाओं ने उनकी मुखाकृति को कठोर और इरादों को और मज़बूत बना दिया था।

अन्य साथियों के ऊपर क्या क्या बीती, इसका भी पूरा विवरण वहाँ सुनने को मिला। विशाल भारत के संपादक श्रीराम शर्मा को उन्होंने हवालात में रखकर बहुत पीटा था। उनका एक कान हवालात में पीटे जाने के कारण सदा के लिये ख़राब गया था।

वहीं पर एक और व्यक्ति के विषय में सुनने को मिला। वह फ़र्रुख़ाबाद में पकड़ा गया था। उसको पकड़ कर हवालात में एक

महीना और २८ दिन रखा गया। इस बीच में उसपर जो अमानुषिक अत्याचार किये गये उसका वर्णन रोमाँचकारी है। उसको पहिले तो डंडों से खूब पीटा गया और इसके बाद उसके हाथों में एक मोटा डंडा इस तरह लगा दिया जिससे उसका सारा दबाव गर्दन के पिछले हिस्से पर पड़े। इस दबाव के कारण इतनी तकलीफ़ होती थी कि उसके जैसा लम्बा चौड़ा और तन्दुरुस्त व्यक्ति भी थोड़ी ही देर में बेहोश हो गया'।

इतने पर भी जब उससे वे इच्छित समाचार न प्राप्त कर सके तो हाथों में हथकड़ियाँ डालकर उसे एक शहतीर में इस तरीके से लटका दिया जिससे उसके पैर ज़मीन से बिलकुल उठ गये। इसके बाद दो बड़े भारी पत्थर अंडकोषों से बांधकर लटका दिये गये। इसके कारण, उसे बहुत दर्द होता था। उसके अंडकोष इस तरह बंधे रहने के कारण सूज गये थे।

एक दूसरे व्यक्ति को हवालात में बंद करके खूब पीटा गया। जब पीटने पर भी उसने अपने साथियों के नाम बताने से इन्कार किया तो उसको तकलीफ़ देने के लिये उसके नाखून में आलपीन चुभाये गये जिससे उसे बेहद दर्द होता था।

उस दिन इस तरह के बहुत से समाचार सुनने को मिले जिनसे बहुत दुःख तो हुआ ही पर साथ ही साथ क्रोध ने आकर प्रतिशोध की भावना जाग्रत कर दी। कैसे इन सबका बदला लिया जायगा? क्या इसे यों ही भुला दिया जायगा? क्या देश के लोगों के साथ अमानुषिक अत्याचार करने वाले लोग फिर स्वच्छन्दता पूर्वक मौज़ से घूमेंगे? क्या जिन लोगों ने देश के मुसीबत के वक्त नीचता करने में कुछ भी कसर न छोड़ी उसका फल उन्हें न मिलेगा? और इन सबका कोई प्रतिकार न होगा?

उस दिन जो कुछ मुझे मालूम था वह सब मैंने अपने साथियों को विस्तार पूर्वक बता दिया और उन्होंने भी जेल तथा अन्य व्यक्तियों का मुझे सविस्तार परिचय दिया। शाम को ६ बजे के लगभग जेल के जमादार और नम्बरदार हम लोगों को बंद करने आगये। सब लोग अपनी बारिक में चले गये। बाहर दरवाज़े में दो दो ताले इस ढंग से लगाये जाते थे जिससे अन्दर के कैदी उन्हें किसी तरह से भी न छू सकें।

उस दिन बारिक के अन्य व्यक्तियों से भी परिचय हुआ। लखनऊ में आकर ठंड का नामोनिशान नहीं रह गया था। रात को मच्छर खूब भनभना रहे थे। अंधेरा होते ही लय पूर्ण आवाजें आने लगीं। गौर से सुनने पर मालूम पड़ा कि सी. क्लास की बारिक में पहरा दिया जा रहा है। हर १५ मिनट के बाद गिनती होती और उसके बाद यह लय युक्त गान सुनाई पड़ता—'एक, दो............तिरपन चौवन और हम पचपन कैदी, ताला, जंगला, लालटैन सब ठीक है हुजूर.........बिलकुल सोने वालों के सिर पर खड़े होकर इतनी जोर से आवाज लगाई जाती थी कि आधे मील तक सुनाई पड़ती थी और फिर हर पंद्रह मिनट के बाद..........लेकिन फिर भी वे लोग सोते रहते थे। दिन के श्रम के कारण तथा दिनों, महीनों और वर्षों रहते रहते इस आवाज़ के अभ्यस्त हो जाने के कारण, शायद उनकी निद्रा नहीं टूटती थी।

सुबह खूब उजाला हो जाने पर बारिक का दरवाज़ा खोला गया। वहाँ के पाखाने अजीब ढंग के थे। उनमें बैठने की जगह ऐसी थी, जिसमें पर्दा बिलकुल नहीं था। अन्य कैदियों से सुनने को मिला कि सी० क्लास में तो घंटी बजाई जाती है। जब घंटी के बजने पर एक आदमी शौच करके नहीं उठता तो उसे हाथ पकड़ कर ज़बरदस्ती उठा लिया जाता है। उसके साथ साथ जमादार गालियाँ देते हुए कहती है, 'साले उठता नहीं, शाम तक बैठा हुआ क्या..................इत्यादि बेहद असभ्य बातें?"

लखनऊ सेन्ट्रल जेल में करीब ढाई हजार कैदी बंद थे। और

ये कैदी भी वे लोग थे जिनको किसी संगीन जुर्म में पकड़कर लम्बी सजा दी गई थी। ज़्यादा तर कैदी कत्ल करके और डाका डालकर आये थे। उनमें सभी उम्र के लोग थे। हिलती हुई गर्दन और सफ़ेद दाढ़ी वाले बूढ़ों से लेकर चौड़े सीने वाले जवान पट्ठों तक।

जेल के बीचों बीच पहरा देने की एक चौकी सरीखी जगह है। इसे जेल में गुमटी कहा जाता है। सुबह को बारिक खुलने के बाद लम्बे रास्ते से होकर लोग गुमटी पर जमा हो जाते हैं। गर्मियों में, फटा हुआ लाल धारी वाला एक नेकर और फटा हुआ एक बनियान, उस पर लाल टोपी लगाने पर अच्छा तन्दुरुस्त और खूबसूरत आदमी भी विकासवादियों के आदि पूर्वज के रूप को फिरसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता सा ज्ञात होता था। यह थी उनकी पोशाक।

जो कैदी, काफ़ी दिनों जेल में रह चुकता और उस काल में जेल के नियमों का उल्लंघन नहीं करता, उसको नम्बरदार बना दिया जाता। उसे पीले कपड़े मिल जाते। वह अन्य कैदियों का अफ़सर हो जाता। उनसे काम लेने का ज़िम्मा उसका होता। उसको एक डंडा भी मिल जाता है, जिससे काम न करने पर वह दूसरे कैदियों को मार मार कर काम लेता।

सुबह गुमटी पर जेल के सारे बाबू और अफ़सर जमा होते हैं। उनके सामने फिरसे सब कैदियों की गिनती की जाती है और फिर उनको अलग अलग कतारों में बाँट दिया जाता है। नल से पानी चढ़ाने वाले एक जगह, ज़मीन खोदने वाले एक जगह, मेहतर का काम करने वाले एक जगह और इस भुंड को 'कमान' कहते हैं। दिन भर काम करने के लिये फिर वे अलग अलग दिशा को चल देते हैं, पैरों में बेड़ियों की झनझन और हाथों में तसला कटोरी की खड़ खड़, टन टन, की आवाज़ करते हुए।

जिन लोगों से नम्बरदार या जमादार नाराज़ होता उनकी

शिकायत की जाती और सब लोगों के सामने गुमटी पर उनको पीटा जाता। बेड़ियाँ डालकर उनको कालकोठरी की सज़ा दे दी जाती, सबको दिखाकर, आतंकित करने के लिये।

काल कोठरियाँ संगीन जुर्म करने वालों के लिये होती हैं। एक बार सात दिन तक मुझे भी रहना पड़ा था। दो कदम की चौड़ी और सवा तीन कदम की लम्बी, केवल एक दरवाजा और कोई रोशनदान नहीं। इसी कोठरी में एक तरफ को पाखाना और पेशाब करने की जगह होती है जिन लोगों को सख्त सजा होती है उनको बेड़ियाँ डालकर रखा जाता है। साथ में उनकी चक्की भी इसी में रहती है। उसे पीसने के लिये इतना अनाज दिया जाता कि दिन भर में भी मुश्किल से पिस सकता है और न पिसने पर फिर गाली और डण्डे सहने पड़ते हैं।

सी० क्लास के राजनीतिक कैदी काम करने से इनकार करते तो उस अपराध में उनको बेहद पीटा जाता, बेड़ियाँ डालकर महीनों कालकोठरियों में रखा जाता और फिर भी उनको काम करने के लिये मजबूर किया जाता। लखनऊ में अलमोड़ा और पूर्वी जिले के राजनीतिक कैदी थे, जिनको स्पेशल कोर्ट ने लम्बी लम्बी सजायें दी थीं। उनमें से कुछ लोगों के साथ बड़ा अमानुषिक अत्याचार किया जाता था। जेल में जब मैं पहिली बार गया तो ये लोग खूब मजबूत थे। अस्पताल में एक बार अलमोड़ा के लोगों से भेंट हुई। वे लोग गौर वर्ण के, खूब तन्दुरुस्त थे और उनके चेहरे लाल थे, लेकिन जब पौने तीन साल बाद मैं छूटा उस समय सब लोग दुबले होगये थे, उनका रंग पीला होगया था और जेल के डाक्टर तथा अन्य कर्मचारियों की लापरवाही के कारण जेल में उनका एक साथी भी उनसे सदा के लिये बिछुड़ गया।

मेरे पहुँचने के पहिले मेरे जो अन्य साथी नजरबन्द थे उनका जेलवालों से झगड़ा होचुका था। जेलवालों ने पुलिस को बुलाकर

बन्द कैदियों पर लाठी चार्ज करवाया था। सब लोगों को खूब पीटा गया। २५–३० व्यक्तियों को दो दो महीने कालकोठरियों में बन्द रखा गया। लोगों ने भूख हड़ताल की और एक-डेढ़ महीने तक अनशन चलाने के बाद उसे खत्म कर देना पड़ा।

उन दिनों जेल कर्मचारी भी, पुलिस और फौज के समान मन माना व्यवहार कर रहे थे। कहीं भी कोई भी सुनवाई नहीं थी। जो जितना ही जुल्म करता उसकी उतनी ही तरक्की होती थी! जिन जमादारों ने ज़्यादा बेदर्दी से राजवन्दियो को पीटा उनको १०० रु० और ७५ रु० इनाम के दिये गये। देश की अन्य जेलों में भी ऐसा ही व्यवहार किया गया। नारे लगाने पर जेल में बन्द कैदियों पर गोलियाँ चलाई गईं ? उनको जेल का छोटे से छोटा कर्मचारी जलील करता, गालियाँ देता और बाहर उनके घर वालों को परेशान करने में कोई कसर न रखा जाती। जेल से बाहर कोई समाचार नहीं जाने पाता था और अगर बाहर चला भी गया तो कोई पत्र उसे छाप नहीं सकता था।

अन्य जेलों से आये हुए साथियों से भी ऐसे ही समाचार सुनने को मिलते थे। सीमा प्रान्त के गान्धी अब्दुल गफ्फार खाँ जैसे व्यक्तियों तक को कालकोठरियों में बन्द रहना पड़ा। खाने को उनको मिट्टी मिली रोटियाँ दीगई और इतना पीटा गया कि उनकी पसलियाँ तक टूट गई। इन सब तकलीफों को सहते हुए भी जब वे बेहद बीमार थे तब भी जेल का डाक्टर उन्हें देखने तक नहीं आया और देश के अखबार सरकारी खबरों को छाप कर लिख रहे थे कि सीमा प्रान्त के गान्धी बिलकुल स्वस्थ हैं। अन्य लोगों का तो कहना ही क्या था ?

वह ऐसा ही जानता था। दूसरे तो कहते ही थे; लेकिन, हमारे साथी जो पहले क्रान्ति न करने के कारण कांग्रेस और महात्मा गान्धी को गालियाँ दिया करते थे, उनको भारतीय क्रान्ति का रोड़ा बताया

करते थे, वे अब क्रान्ति के युग में देश के दुश्मनों के साथ होगये थे। देश पर जान देने वालों को, ये भावुक, अनभिज्ञ युवक कहते थे और देश की आजादी की जंग को जारी रखने वालों को गुण्डा कह कह कर बदनाम करते थे। ऐसी ही बातें उस काल का कम्युनिस्टों का पत्र 'लोक युद्ध' छापा करता था। शहरों में बड़े बड़े पोस्टर चिपकाये गये थे, जिनमें आन्दोलन में काम करने वालों को गुण्डों के रूप में दिखाया गया था; जो लोगों की जान और माल को बर्बाद करने जा रहा हो। दियासलाई के बक्सों पर भी ऐसे चित्र बने रहते थे और लिखा रहता था 'गुण्डों से होशियार'।

अफवाहों का जोर था कोई कहता, जब जापानी हिन्दुस्तान में आवेंगे तो जेल में बन्द सब कैदियों को जेल की दीवारों के सहारे खड़ा करके गोलियों से मार दिया जायगा' महायुद्ध के विषय में भी ऐसी ही बातें सुनने में आतीं! सुभाष बोस पर लोग निगाह लगाये बैठे थे कि वह आयें तो फिर से एक बार इस अपमान का बदला लें। लोग बेचैन थे, अपमानित थे और बेबस थे। हरएक आदमी परिवर्तन चाहता था। हरएक नवयुक संसार के इस आड़े वक्त में पूरा पूरा भाग लेना चाहता था; किन्तु स्वतन्त्र रूप से, किसी का गुलाम रह कर नहीं और उसका कोई रास्ता नहीं था। यही परेशानी थी।

जेल में भी उस समय में दो ग्रुप बन गये थे कुछ लोग कहते थे कि इस आन्दोलन में हिंसा हुई, लोगों ने गान्धीवाद के खिलाफ यह काम किया और यह सब गलत हुआ; इसका विरोध करना चाहिये था। और कुछ लोग यह कहते थे कि उस युग में जो कुछ भी जनता ने किया वह ठीक था, ऐसा ही होना चाहिये था।

एक दल नौजवान और अन्य वृद्ध कांग्रेसियों का था जो उग्रवादी थे। वे उन लोगों के खिलाफ थे जिन्होंने इस आंदोलन में बिना कुछ किये अपने आपको पकड़ा दिया था और एक दल उन लोगों का था जो यह कहते थे कि अबकी कांग्रेस को उग्रवादियों से साफ कर दिया

जायगा। कुछ कहते थे कि हम फोन करके जेल जाने वाले लोगों को मञ्च से खींच लेंगे और कुछ गान्धीजी के सन् ४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह को ही इस आन्दोलन का रूप देने के हामी थे।

आपस में बैठ कर इसी तरह की बहस हुआ करती थी। रात को बारिक में बन्द होने के बाद एक जगह दो आदमी बहस करना शुरू करते और फिर दोनों तरफ के हामी आकर उस बहस में भाग लेने लगते और गरमा गरम बहस छिड़ जाती। सुबह-शाम टहलते हुए भी इसी तरह की बातें होतीं।

कुछ लोग अपने साथियों की बुराइयाँ करते। कहते, "फलाँ आदमी ने इतना रुपया खा लिया, फलाँ व्यक्ति ने बेहद बेपरवाही से काम किया, फलाँ व्यक्ति की बेवकूफी से सब लोग पकड़े गये।

इसी तरह एक दिन टहलते समय बहस शुरू हो गई। एक साहब कह रहे थे, कि "तार काटना, रेल रोकना यह सब ग़लत हुआ, इसमें जनता का दोष था।"

उनसे बहस करने वाले व्यक्ति ने कहा, "तो आपके ख्याल में क्या होना चाहिये था?"

"मैं समझता हूँ कि हम लोगों को अहिंसक ही रहना चाहिये था। जनता ने यह सब जो किया उसी की वजह से सरकार को भी बहाना मिल गया और फिर उसने भी मनमानी की।"

मैं भी साथ में टहल रहा था। मैंने बीच में ही रोक कर उनसे पूछा, 'आप कौन सी तारीख को पकड़े गये थे?"

उन्होंने अपनी प्रमुखता दिखाते हुए कहा, "मैं भी ६ ता० को वर्किंग कमेटी के साथ पकड़ लिया गया था।"

मैंने कहा, "हाँ; इसीलिये आप ऐसी बातें करते हैं। जो लोग बाहर रहे हैं, जिन्होंने बाहर की हालत देखी है। वे जानते हैं कि इसमें किसका कसूर था?"

बीच में ही व्यंगात्मक ढंग से वे बोले, "हाँ; उन लोगों ने क्या देखा?"

मैंने कहा, 'आपको मालूम है कि वर्किंग कमेटी के पकड़े जाने के बाद, जनता ने आग लगानी शुरू नहीं की थी, गाड़ी उलटनी शुरू नहीं किया था, तार नहीं काटे थे बल्कि विद्यार्थियों के जलुस निकले थे, जो इस अत्याचार के खिलाफ़, इस अन्याय के विरुद्ध और इस अपमान के विरोध में नारे लगाते थे। उन्होंने न किसी को पत्थर मारा था न किसी को गाली दी और ऐसे ही निहत्थे देश के लड़के लड़कियों के जलूसों पर घंटों गोलयाँ चलाई गईं और उसके बाद निहत्थे बेकसूर लोगों के मकानों को लूटा गया, स्त्रियों की बेइज्जती की गई। गाँवों को जलाकर खाक कर दिया गया। इसके अलावा बर्बरता के वे काम किए गए जो शायद दुश्मन भी दूसरे लोगों के साथ नहीं करता। यह सब देखकर खामोश रह जाना सबसे बड़ी कायरता होती। इन सबके विरोध में जो कुछ भी किया जा सकता था, वह सब अहिंसा थी।"

"हम लोगों की तो अब प्रकृति ही कुछ ऐसी हो गई है कि अगर प्रयत्न करें भी तो सहसा हिंसक नहीं हो सकते। इतना बड़ा आंदोलन हुआ। कितनी संपदा नष्ट हो गई, कितने लोग मर गये लेकिन आपने देखा जनता ने जाकर अँग्रेज अफ़सरों को पकड़ कर जान से नहीं मारा, बल्कि जो उनको मिल भी गया, उससे उन्होंने हथियार छीनकर छोड़ दिया। और फिर उन हथियारों का स्वयं भी इस्तेमाल नहीं किया। उन्हें या तो किसी नदी में फेंक दिया या बर्बाद कर दिया। आप किसी भी चीज़ को उड़ती नज़र से देखकर अपना निर्णय मत कीजिये, ज़रा गहराई में जाइये।"

"अच्छा, तो आप मानते हैं कि जो कुछ जनता ने किया वह सब ठीक था और वह अहिंसा ही थी।" ज़रा व्यंग पूर्वक कहकर वे चुप हो गए।

मैंने कहा, 'माफ़ कीजिये मैं आपसे साफ़ बता दूँ, आज हम अहिंसा अहिंसा चिल्लाते हैं; लेकिन, आप जानते हैं, अहिंसा का ठीक अर्थ अगर कोई जानता है और उसको वीरता के साथ उपयुक्त कर सकता है तो वे महात्मा गांधी ही हैं। उन जैसा वीर व्यक्ति ही अहिंसा के सिद्धांतों के अनुसार कार्य कर सकता है, अन्य लोग जो अहिंसा की दुहाई देते हैं। वास्तव में कायर हैं और अपनी कमज़ोरी को अहिंसा का नाम देकर छिपाना चाहते हैं।'

'देखिये यदि अहिंसा संसार में फैल जाये तो इससे बड़ी देन तो दुनिया के लिये हो ही क्या सकती है, लेकिन उसका यह ढंग नहीं। एक और महायुद्ध के बाद शायद, संसार अहिंसा को अपनायेगा। लेकिन, जो अहिंसा कायरता का बाना पहिनकर फैलाई जायगी वह अधिक दिन टिकने वाली वस्तु नहीं।'

'देखिये, दुनिया की प्रत्येक सभ्यता की कुछ समय के बाद अवनति प्रारम्भ हो जाती है। यही प्रायः सभी राष्ट्रों का जीवन-इतिहास है। किन्तु, इस अवनति से राष्ट्र फिर से उठ सकता है यदि वह अपने पतन के कारणों को दूर करदे। लेकिन पतन की सीमा तब पहुँच जाती है जब वह राष्ट्र अपनी उस अवनत अवस्था को ही दूर करने का उपाय न सोचकर, उस अवस्था को ही जीवन-उद्देश्य मानने लगता है। उस पतन की स्थिति को सुन्दर नामों से सुशोभित करके उसके आधार पर एक दर्शन की रचना कर लेता है और फिर संसार में अपनी उस अवस्था को ऐतिहासिक सत्यों के आधार पर प्रतिपादित करने लगता है।'

बीच में ही रोककर वह बोले, 'मैं समझा नहीं, आपकी इन सब बातों का क्या तात्पर्य है।'

मैंने कहा, "मैं आपसे यह बताना चाहता था कि आदमी की बुद्धिमत्ता और उसकी शक्ति इसी में है कि वह अपनी सीमा से परिचित हो जाय। वह यह जान ले कि वह कितने गहरे में है।

बेकार की ख्याली दुनिया में और आदर्शवाद में कुछ नहीं धरा। जो बात साफ़ है उसे आदर्शों के पीछे छिपाना ठीक नहीं। कुछ लोग जो अपनी संपदा को, अपने परिवार को और अपने आपको कष्टों में डालने की शक्ति नहीं रखते थे, उन्होंने जो कुछ किया वह हो सकता है, अपनी मजबूरियों के कारण किया हो; लेकिन, अब उसको आदर्शों का बाना पहनाकर जो उसका प्रतिपादन करते हैं वह उनकी धृष्टता है।"

उनकी उम्र लगभग ४५ वर्ष की थी, अपने ज़िले के वे एक मात्र नेता थे। लोग उनका सम्मान करते होंगे और संभवतः उनके वाक्यों से उत्तेजित जनता ने बहुत बार नारों से सारे वातावरण को गुंजित कर दिया होगा। आज अपने से कम उम्र के एक व्यक्ति से अपने विचारों के विरुद्ध ऐसी साफ़ बातें, इतने क़रीब से, सुनकर कुछ नाराज़ होकर बोले, 'आज का हर नौजवान अपने को बड़ा भारी नेता समझता है और जो जी में आता है कहता है; जैसे बाकी सब लोग बिलकुल बेवकूफ़ हों।'

मैंने कहा, 'अगर वह इस योग्य है और फिर अपने को ऐसा समझता है तो अच्छा है। हाँ; अगर, बेकार में, बिना बुनियाद के जो इस तरह की बातें करता है, वह गलत रास्ते पर है।'

'हाँ, आप जो कहते कि हरएक अपने आपको नेता समझने लगा है, सो तो ठीक ही है। इस आन्दोलन ने लोगों को ऐसा सोचने के लिये मजबूर किया। जनता ने बिना नेताओं के हिन्दुस्तान के इतिहास में अमर रहने वाला एक इन्कलाब किया, खुद अपने हाथों से, खुद अपने में से कुछ लोगों को नेता चुनकर। यही इस आन्दोलन की विशेषता थी।"

'और, माफ़ कीजियेगा आप बुज़ुर्ग हैं, लेकिन एक बात मैं आपसे कह दूँ। जनता ने जो कुछ किया उसकी उम्मेद भी हमारे नेताओं को नहीं थी। उन्हें अपनी ताकत का पूरा अन्दाज़ा नहीं था। जनता उनसे आगे बढ़ गई थी।'

'और आपका जो यह ख्याल है कि नेता ही जनता को उभारता है, उनको क्रान्ति के लिये उत्तेजित करता है; यह ग़लत है। सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों से व्यग्र जनता स्वयं क्रान्ति करने को सोचा करती है और ऐसी ही अवस्था में जो उस दिशा को जाने वाला उसे मिल जाता है वह उसके पीछे हो लेती है।'

'और फिर; व्यक्तियों के न रहने से भी जनता की वह गति नहीं रुकती, वह आगे बढ़ती चली जाती है; अगुये के मृत शरीर को भी पैरों से खोदती हुई। उसे व्यक्तियों से प्रेम नहीं होता और प्रगति के लिये यह आवश्यक भी है। उद्देश्य की प्राप्ति ही उसका एक मात्र ध्येय होता है।

वे बोले, 'यह तो आप लेक्चर दे रहे हैं, अगर बिना नेता के भी जनता आगे बढ़ सकती है तो ग़दर के बाद जब ग़दर के मुख्य पात्रों को मार डाला गया तो जनता ने क्यों फिर अपने आप आन्दोलन नहीं छेड़ा? क्यों इतने साल बाद गांधी जैसे व्यक्ति ने आकर देश में एक जागृति पैदा की?'

मैंने कहा, 'यह लेक्चर नहीं है। मैं तो उन सामाजिक नियमों का वर्णन कर रहा हूँ, जिसे समाज विज्ञान के विशेषज्ञों ने इतिहास और विशेष घटनाओं की कसौटी पर कसकर निर्धारित किया है।'

'आपने सन् १८५७ के आन्दोलन के बारे में जो कहा उसको भी मैं बताता हूँ। सन् ४२ और सन् ५७ के आन्दोलन में महान् अन्तर था। सन् ५७ में जनता अँग्रेज़ों के खिलाफ़ थी, लेकिन वह आंदोलन उस समय के गद्दी से उतारे हुए नबाबों और राजाओं को फिर से तख्तनशीन करने के लिये आरम्भ किया गया था, जनता अपने आर्थिक और सामाजिक हक़ों को लेने के लिये नहीं लड़ी थी। और, जब वे राजा और महाराजा गोली से मार दिए गए तो जनता भी खामोश हो गई।'

'लेकिन सन् ४२ का आन्दोलन जनता का अपना आंदोलन था। अपनी समस्याओं को स्वयं अपने हाथों हल करने का एक ऐतिहासिक प्रयत्न था और वे समस्यायें जब तक जनता के सामने रहेंगी तब तक जनता उनके लिये लड़ती रहेगी। मुमकिन हो सकता है कि कभी कभी उसको आप शांत अवस्था में पायें; लेकिन, वह ऐसी परिस्थिति होती है जब आग धीरे धीरे अन्दर बढ़ती जाती है और फिर और भयंकर रूप से फूट निकलती है।'

"सन् ४२ में जनता ने जवाहर लाल या महात्मा गांधी को दिल्ली का सम्राट बनाने के लिये खून नहीं बहाया। भारतवर्ष अन्य राष्ट्रों के समान स्वतंत्रता और बराबरी का व्यवहार चाहता था। और इसी भाँति राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति भी अपने लिये बराबरी का स्थान चाहता था। इसलिये, सन् ४२ का आन्दोलन हुआ। आज सम्भव है दमन से वह शांत सा दिखाई देने लगे; लेकिन, फिर किसी दिन देखियेगा कि यह आग जल उठेगी और भी भयंकर रूप में। जब तक इन समस्यायों का हल नहीं होगा तब तक बराबर ऐसा ही होता रहेगा। इसमें व्यक्ति प्रमुख नहीं है; इसमें समस्यायें प्रमुख हैं। ऐसी समस्याओं के उत्पन्न होने पर राष्ट्र में नेता तो स्वयं उत्पन्न हो जाता है, हर देश में और हर काल में।'

वे अब खामोश हो गये थे, संभवतः बहुत से विचारों का मन ही मन विश्लेषण कर रहे होंगे। हम लोग चुपचाप जेल की दीवार के नीचे टहल रहे थे। शाम हो गई थी, जेल के अन्य कैदी लौट कर गुमटी की ओर चल दिये थे, बन्द होने से पहिले फिर से एक बार गिनती के लिये।

सूर्य, संध्या से पूर्व ही जेल की दीवार के पीछे ओझल हो गया था। हम लोग करीब एक घण्टा देर में बन्द किये जाते थे। थोड़ी देर इसी तरह बिलकुल चुपचाप टहलने के बाद उन्होंने कहा, "हिन्दुस्तान की भी अजीब हालत है। इतनी ग़रीबी है, इतनी जहालत है कि हम लोग संसार से बहुत पीछे रह गये हैं; लेकिन, फिर भी मिलकर

काम नहीं कर सकते। अभी तक तो मुसलिम लीग ही थी, अब कम्युनिस्ट भी पैदा हो गये ! कैसे बेड़ा पार लगेगा ?"

मैंने कहा, "वास्तव में कम्युनिस्ट पार्टी का इस समय का कार्यक्रम देश के लिये बहुत हानिकारक रहा और उस पार्टी के लिये भी वह ज़हर हो गया। लेकिन वे लोग भी क्या करते ? उनके यहाँ तो "पार्टी-अनुशासन" सबसे बड़ी चीज़ है और वह अनुशासन जब तक दूसरों के हाथ में है तब तक ऐसा ही होगा। अन्य देशों में भी कम्युनिस्ट पार्टियों ने देश के सबसे नाजुक समय में गद्दारी की है।

"जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी दुनिया की सब कम्यूनिस्ट पार्टियों से अधिक अनुशासित और संगठित थी। लेकिन, उस पार्टी के साथ भी धोखा हुआ। जबसे तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिस्ट पार्टी संघ स्टालिन के हाथों गया, तब से सब देशों में ऐसा ही हुआ। स्टालिन की नीति तो यह थी कि पहिले रूस शक्तिशाली हो, उसके बाद दूसरे देशों को देखा जायगा। इतना ही नहीं; बल्कि, रूस के लिये यदि दूसरे देशों के हितों की बलि भी देनी पड़े तो दे दी जाय।"

"इसी नीति के आधार पर जर्मनी की कम्यूनिस्ट पार्टी को आदेश दिया गया कि वह हिटलर के साथ मिल कर काम करे और सोशल डेमोक्रेट पार्टी का विरोध करे। इस नीति के फलस्वरूप हिटलर ने, सोशल डेमोक्रेट और कम्यूनिस्ट दोनों पार्टियों को खत्म कर दिया।"

"यही हाल हुआ चीन की कम्यूनिस्ट पार्टी का। फ्रांस को कम्यूनिस्ट पार्टी का भी व्यवहार अजीब सा रहा। जब महायुद्ध प्रारम्भ हुआ तो वहाँ की कम्यूनिस्ट पार्टी को आदेश दिया गया कि वे लोग फ्रांस की सरकार की मदद न करें, क्योंकि उसको वे धनिक वर्ग की सरकार कहते थे। और, जब हिटलर की तोपें पेरिस की सीमा पर गरजने लगीं तो वहाँ की कम्यूनिस्ट पार्टी के लिये आदेश आया कि तुम हिटलर का विरोध करो और फ्रांस की सरकार की पूरी पूरी

मदद करो। लेकिन, तब हो ही क्या सकता था। ऐसा ही विरोध कम्यूनिस्ट पार्टी की नीति में अन्य देशों में भी देखने को मिलता है।

'भारतवर्ष के कम्यूनिस्ट प्रारम्भ ही से इस युद्ध के विरुद्ध थे और कहा करते थे कि गाँधीवाद आज साम्राज्यवाद का साथ देकर भारतीय जनता की पीठ में छुरा भोंक रहा है। लेकिन, वे लोग एकही रात में बिलकुल बदल गये। राष्ट्रीय समस्याओं और परिस्थितियों के अनुसार उनकी नीति में यह परिवर्तन नहीं हुआ, यह तो उनको आदेश दिया गया था, तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिस्ट संघ की ओर से और फिर अपने कार्यों को जनता के सामने उचित साबित करने के लिये बहुत से तर्क उन लोगों ने खोज निकाले।

उन्होंने उस समय जो कुछ किया उससे चाहे जिस राष्ट्र का लाभ हुआ हो, भारतवर्ष को तो उससे नुकसान ही हुआ। उन्होंने देश को मुसीबत के वक्त धोखा दिया। जनता उम्मेद करती थी कि वे साम्राज्यवाद के खिलाफ़ आवाज़ उठायेंगे लेकिन नौकरशाही के साथ उनका ऐसा घुल मिल जाना जनता की समझ में नहीं आता था। इसको समझने की शक्ति केवल कम्यूनिस्टों में ही थी।

धीरे धीरे अन्धेरा होता जा रहा था और नम्बरदार बन्द होने के लिये आवाज़ लगा रहा था। हम लोग भी बात करते हुए अपनी अपनी बारिकों की ओर चल दिये। वे दूसरी बारिक में थे और मैं दूसरी बारिक में; इसलिये बातचीत के सिलसिले को तोड़ना पड़ा।

× × ×

सुबह करीब ६ बजे एक नम्बरदार लोगों से नाम पूछता हुआ मेरे पास आया और कहने लगा, "चलिये आपको, डाक्टर साहब ने अस्पताल में बुलाया है।"

मैं उसके तात्पर्य को समझने की कोशिश ही कर रहा था कि मेरे पड़ोसी ने बताया, कि शायद मुझे डाक्टरी के लिये बुलाया होगा।

जेल में जाने के बाद हर एक क़ैदी की डाक्टरी होती है। मुझे आये तीन दिन हो गये थे लेकिन अभी तक इस चीज़ की नौबत नहीं आई थी।

जेल की शब्दावली भी कुछ भिन्न है। वहाँ बहुत सी बारिकों के समूह को 'सर्किल' कहते हैं और उनके चारों तरफ़ की दीवार को 'डंडा'। हर 'सर्किल' के चारों तरफ़ दो या तीन और 'डंडे' होते हैं उसके बाद जेल की बाहर से दिखाई पड़ने वाली दीवार आती है।

अस्पताल जाने के लिये ऐसे ही कई 'डंडे' पार करने पड़े। हर 'डंडे' में एक छोटा सा दरवाजा होता है और इस पर ताला लगाकर नम्बरदार और जमादार का दिन रात पहरा रहता है। जब किसी क़ैदी को बुलाया जाता है तो जेल का कर्मचारी एक पर्चे पर उस व्यक्ति का नाम और बुलाने का कारण लिखकर जेलर के पास भेजता है। फिर वह जमादार और नम्बरदार को साथ लाने के लिये भेजता है।

दूसरे डंडे से बाहर निकलने के बाद देखा कि कुछ क़ैदी एक जगह दरी बुनने का सूत रंग रहे हैं, कुछ क़ैदी जमीन को फ़ावड़े से खोद रहे हैं, कुछ ज़्यादा उम्र के लोग मिट्टी के बर्तन बना रहे हैं, कुछ कपड़े धो रहे हैं..........।

और आगे चलने के बाद चूने का एक भट्ठा दिखाई पड़ा। यहाँ पत्थर फूँक कर चूना बनाया जाता था। मैंने साथ वाले नम्बरदार से पूछा, 'यह क्या है?" उसने उसको दिखाते हुए कहा, साहब, यह जेल की सबसे ख़तरनाक चीज़ है। पहिले जेल वाले यह करते थे कि जिस क़ैदी से उनका बहुत झगड़ा हुआ, उसे भट्ठे पर काम करने भेज दिया और फिर मौका मिलने पर धधकते हुए भट्ठे में ढकेल दिया। और आप जानते हैं कि अगर जेल से कोई भाग जाय तो 'शेर' और यहाँ मर जाय तो 'मक्खी'। यहाँ

जान की कोई क़दर थोड़े ही होती है। जेल वाले सब एक हो जाते हैं।'

बाईं तरफ जेल का मध्य केन्द्र गुमटी थी। उसके आगे टीन का एक गोल शेड पड़ा हुआ था। इस शेड के चारों ओर ३-४ नम्बरदार और जमादार हाथ में डंडा लिये खड़े हुए थे और वहाँ से बड़ी ज़ोर की आवाज आ रही थी। कुछ कर्कश स्वरों की और कुछ एक साथ बहुत से व्यक्तियों के मिल कर काम करने की।

मैंने अपने साथ के नम्बरदार से पूछा, 'यहाँ क्या हो रहा है ?"

वह कहने लगा, 'साहब, यह गर्रा है।'

जेल की शब्दावली का एक और नया शब्द सामने आगया। मैंने पूछा, 'गर्रा क्या?'

उसने पास में ही पानी की एक बड़ी टंकी दिखाते हुए कहा, "देखिये, यह टंकी है। इसी में, जेल भर में काम में लाने के लिये पानी भरा जाता है। ये लोग जहाँ गर्रा चला रहे हैं उसके नीचे एक कुंआ है और इस मशीन के जरिये पानी ऊपर चढ़ता है। अरे, साहब, इसमें बड़ी मशक्कत पड़ती है। गर्रा जान निकाल लेता है। इन लोगों को दूसरे क़ैदी अपनी रोटियाँ देते हैं तब जाकर इनका पेट भर पाता है। यहाँ पर हर नये आये हुए क़ैदी को पहले गर्रे में भेज देते हैं। उसके बाद उससे चक्की चलवाई जाती है।

इसके अलावा जिस आदमी को इन्हें परेशान करना होता है उसको ये लोग गर्रे में देते हैं।"

मैंने खड़े होकर वहाँ देखा कि उस टीन के शेड में बहुत सी पानी चढ़ाने की मशीनें लगी हुई हैं। एक बार में चार आदमी उस मशीन को चलाते हैं और हर मशीन पर आठ आदमी काम करते हैं। हर पंद्रह मिनट के बाद उनकी ड्यूटी बदलती है और फिर दूसरे चार आदमी चलाने लगते हैं। इसी तरह सुबह से शाम तक ये लोग काम करते रहते थे। उनके पास जमादार डंडे लिये

खड़ा रहता जो लगातार चिल्ला कर कहता, 'तीसरा नम्बर, हरामखोरी कर रहा है? दूसरा नम्बर, क्या अपनी......नाच देख रहा है?' और कभी कभी वह अपने डंडे का भी प्रयोग करता।

अस्पताल में दाखिल होने से पहिले फिर एक फाटक पड़ा। वहाँ पर नम्बरदार ने पर्चे को ग़ौर से देखने के बाद अन्दर जाने दिया।

अस्पताल के मैदान में युक्लिप्टस के कुछ पेड़ थे—सफ़ेद, लम्बे तने के, जो इतने ऊँचे थे कि नीचे खड़ा होकर ऊपर देखने के लिये टोपी संभालनी पड़ती थी। वास्तव में वह ऐसी चीज़ थी जो मालूम होती थी कि मानो जेल के बाहर की कोई वस्तु हो, नहीं तो हर एक वस्तु पर कारागार की छाप दिखाई पड़ती थी।

डाक्टर कहीं मरीज़ को देखने चला गया था। नम्बरदार मुझे उन कोठरियों में ले गया जहाँ पर दूसरे बी० क्लास के राजनैतिक कैदी बीमार-अवस्था में थे। वहाँ पर सी० क्लास के भी कैदी बैठे हुये थे। अस्पताल में जेल के अन्य भागों की अपेक्षा कम सख्ती से काम लिया जाता है। उन लोगों से वहाँ के विषय में बहुत सी बातें सुनने को मिलीं।

जब कोई मालदार कैदी जेल में पकड़ कर आजाता है तो जेल वालों के मज़े आजाते हैं और फिर उसे चक्की चलाने का या गर्रे का काम दे दिया जाता है। इस बीच में जेलवालों से मिले हुए कुछ कैदी उन लोगों को समझाते हैं कि, 'अबे, कुछ पैसा दे दे; नहीं तो यों ही मर जायगा।' घर वालों के लिये उससे चिट्ठी लिखवा ली जाती है और उस चिट्ठी को भेजने का काम भी जेल का वार्डर (जमादार) ही करता है।

एक बार रुपया आजाने के बाद उसको कुछ हल्का काम दे दिया जाता है और फिर कुछ दिनों बाद उससे रुपया मंगाने के

लिये कहा जाता है। अगर वह उनके आदेशानुसार कार्य करता रहता है तब तो ठीक; नहीं तो फिर जेल की यातनाओं का शिकार बनना पड़ता है।

यही कायदा डाक्टरों का था। चाहे कोई कितना ही बूढ़ा कैदी क्यों न हो, चाहे वह किसी भी काम के लायक क्यों न रहा हो; लेकिन, फिर भी जेल का डाक्टर उसके लिये 'इन्फर्म' (कमज़ोरी) नहीं लिखता। जब वह डाक्टर की फ़ीस अर्थात् कुछ रिश्वत दे देता तो उसे 'इन्फर्म' करके भर्ती कर लिया जाता है। वहाँ पर केवल बान बटने का काम उनसे लिया जाता। इसके बाद हर मुलाकात के वक्त उन्हें डाक्टर के लिये रुपये मँगवाने पड़ते, नहीं तो फिर से उन्हें सख्त मेहनत करनी पड़ती। जेल का डाक्टर सार्टीफिकेट दे देता, इसका दिल और जिगर दोनों मजबूत हैं और फिर जेल वाले उससे मनमाना काम लेते।

डाक्टर ने मेरा नाम पूछा, इसके बाद उसने वजन लिया और एक आध चोट के निशान शिनाख्त के लिये लिख कर कहा, 'इन्हें वापस ले जाओ। इनका काम खत्म हो गया।'

रास्ते में एक गर्रा चलाने वाला कैदी मिला। उसकी हथेलियों की मोटी खाल साधारण व्यक्तियों से बहुत मोटी हो गई थी। लेकिन, लगातार गर्रा चलाने के कारण खाल की पर्तें कटती गई थीं और हथेली के उठे हुए स्थानों पर खाल के कट जाने के बाद मांस निकल आया था। और, संभवतः यह सब होने पर भी वहाँ के वार्डर ने उस पर दया नहीं की और उसे गर्रा चलाने के लिए मजबूर किया, जिसके फलस्वरूप उसके हाथ में मवाद पड़ गया था। हथेली सूजकर बहुत मोटी हो गई थी। उँगलियाँ भी सूज कर बहुत मोटी हो गई थीं। अब उगलियों में हरकत नहीं हो सकती थी। गर्रे का डंडा पकड़ने के लिये अब वह मुट्ठी बंद नहीं कर सकता था, इसीलिये उसे अस्पताल भेजा गया था। ठीक होने के बाद फिर से गर्रा चलाने के लिये।

गेट के पास एक दूसरे सी० क्लास के कैदी ने मुझे नमस्कार किया। मैं उसे जानता नहीं था, लेकिन काँग्रेस के लोगों की सब कैदी इज्जत करते ही हैं; इसलिये अधिक ध्यान न देकर आगे बढ़ने लगा। मुझे रोक कर उसने अपने बारे में थोड़ा सा परिचय दिया कि वह भी राजनीतिक कैदियों के साथ बंद किया जाता है। इसके बाद बोला, 'आप बी० क्लास में जा रहे हैं, वहाँ जाकर खबर दे दीजियेगा कि सी० क्लास में—कुछ कैदियों के नाम उसने बताये—जेल वालों ने बहुत मारा है। इसके अलावा उन लोगों को उन्होंने काल कोठारयों में बंद कर दिया है। वहाँ, उन लोगों का क्या हाल है, इसका भी कुछ पता नहीं। उनमें से एक आदमी तो बहुत ज्यादा बीमार था, उसे भी इन लोगों ने नहीं छोड़ा। उसके लिये तो डाक्टर का इंतजाम हो ही जाना चाहिये।' जमादार को देख देख कर नम्बरदार घबड़ा रहा था। वह बार बार कह रहा था, 'साहब चलिये, यहाँ रुकने का काम नहीं है। अगर कोई देख लेगा तो हम पर मार पड़ेगी।' यद्यपि उससे मैं और अधिक बातें जानना चाहता था; लेकिन मज़बूरी थी।

लौटती बार मैं गर्रे के शेड के पास वाले रास्ते से होकर आया। उसके आगे उनका रसोई घर था। उसमें बहुत से कैदी अन्य कैदियों के लिये खाना तैयार कर रहे थे। पैरों से आटा गूँथा जा रहा था। एक तरफ़ एक टीन पड़ा हुआ था और वहीं पर कुछ पत्तों का साग पड़ा हुआ था जिसे दो कैदी गंडासे से कुट्टी की तरह काट रहे थे। बड़े बड़े बर्तनों में कैदियों के लिये दाल बन रही थी। आटे की लम्बी सतह बेल कर उसे एक साँचे से काट कर रोटियाँ बनाई जा रही थीं।

मैंने नम्बरदार से पूछा, "क्या तुम सब लोगों का खाना यहां पर बनता है?"

उसने कहा, "जी नहीं! यहाँ पर ऐसे तीन चार भण्डारे हैं। दो

हजार कैदियों का खाना एक जगह नहीं बन सकता।" इसके बाद वह खाने के बारे में बहुत सी बातें बताने लगा। उसने बताया कि आटा पीसने वालों को बहुत मेहनत करनी पड़ती है और खाना उनको भी दूसरे कैदियों के बराबर मिलता है। इसलिये वे लोग पीसते पीसते उस अनाज में से खा लेते हैं। और फिर, उस आटे को पूरा करने के लिये उसमें रेता मिला देते हैं।

इसी तरह खाने की बाबत बहुत सी बातें बताते हुए वह कहने लगा, "अरे, साहब; यहाँ की आप कुछ मत पूछिये! यहाँ सब लुटेरे हैं। हर एक कैदी को आधा छटाँक तेल मिलता है, इस तरह करीब तीन चार कनस्तर तेल रोज छौंकने के लिये दिया जाता है। लेकिन उसका होता क्या है? सारे जेल के वार्डर और बाबू उस तेल में हिस्सा बाँटते हैं और फिर भण्डारे वाले लोग उसमें अपनी दाल छौंकते हैं। कैदियों को तो नाम के लिये तेल मिल पाता है। यही हाल तरकारी का है। जब जेल में कोई पत्ते का साग सड़ने लगता है तब कैदियों को दिया जाता है और आपने देखा, किस तरह उसे काटा जाता है। न जाने कितने कीड़े इस साग के साथ काट दिये गये होंगे?"

उस रोज़ जब सी० क्लास के कैदियों का खाना आया तो देखने की बहुत इच्छा हुई। मैंने देखा कि उनकी दाल बिलकुल पानी जैसी थी और उसकी सतह पर जले हुए मिर्चों के टुकड़े तैर रहे थे। रोटियों पर कच्चा आटा इतना लगा हुआ था कि कैदी रोटियों को पहले खूब झाड़ कर खा रहे थे।

जेल का कार्य-क्रम बिलकुल एकसा चलता है, हफ्तों, महीनों और वर्षों। वही चेहरे देखने को मिलते हैं, वही दीवारें जो दृष्टि को दूर नहीं जाने देतीं, वही खाना, वही चीजें। धीरे धीरे जीवन का कृत्रिम रूप हो जाता है—नीरस, गति विहीन।

× × ×

जेल में भी प्रायः ग्रुप बन गये थे। पुराने कम्युनिस्टों का एक ग्रुप था, कांग्रेस समाजवादी दल के लोगों का एक ग्रुप था, क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी का अलग ग्रुप था और गांधीवादियों का या जो इनमें से कुछ भी नहीं थे उनका एक ग्रुप था। यही जेल की सबसे निकट की रिश्तेदारी थी।

और फिर, इन ग्रुपों में और ग्रुपों के मेम्बरों में व्यक्तिगत रूप में बहस होती। सिद्धान्तों पर, क्रान्ति करने के ढंग पर और अन्तिम उद्देश्य के रूप पर।

एक दिन एक सज्जन बड़ी जोर जोर से बहस कर रहे थे। बहस का विषय था कि आनेवाली क्रान्ति तो हथियारों से की जायगी और वास्तव में यह क्रान्ति भी हथियारों से की जानी चाहिये थी।' उनका विरोधी उनको उत्तर दे रहा था। लेकिन, वह भी गांधीवाद तथा अहिंसा की ऐसी खिचड़ी पका रहा था कि उसमें से कुछ भी साफ नजर नहीं पड़ता था। थोड़ी देर तक सुनते रहने के बाद चुप रहना मुश्किल हो गया।

मैंने कहा "लेकिन आप हथियार लायेंगे कहाँ से?"

वे बोले, "हम देश में ही हथियार बना सकते हैं, इतने लोगों ने जो बम बनाये थे, वे भी तो कहीं से आये थे।"

मैंने कहा, "आपका ख्याल बिलकुल गलत है। एक दो रिवाल्वर मिल जाने से या पटाखे जैसे दो चार बम छोड़ देने से संगठित फौजी शक्ति को हराया नहीं जा सकता; यह आपकी खाम ख्याली है। आज विज्ञान का ज़माना है। लड़ाई में आप देखते हैं, कितने बड़े और भयंकर बम बनाये जाते हैं और उनसे भी विजय नहीं हो पाती। और आप, घर बैठे बनाये बमों से संसार की एक शक्तिशाली सैनिक शक्ति को परास्त करना चाहते हैं?"

कुछ रुक कर वे फिर बोले, "तो अहिंसात्मक ढंग की क्रान्ति से भी आप अंग्रेज को नहीं निकाल सकते?"

मैंने कहा, "हाँ, निकालना तो कठिन है। लेकिन, अंग्रेज अगर जा सकता है तो अहिंसात्मक ढंग से संगठित क्रान्ति करने पर ही। इस ढंग से नहीं जैसे अब हुई; बल्कि संगठित रूप से।"

"सन् ४२ में क्या हुआ? जब जनता पर अत्याचार होने लगा तो जनता ने स्टेशन फूँकने शुरू कर दिये, गाड़ियाँ रोकनी शुरू कर दीं, लाइन उखाड़नी शुरू कर दीं............। लेकिन विरोधी के पास शक्ति ज्यादा थी, एक जगह की लाइन उखड़ी, उसने मज़दूरों की गाड़ी भेजी और फिर लाइन ठीक हो गई, कार्य होने लगा।"

"हाँ, अगर हम संगठित रूप में होते तो इन सबके करने की आवश्यकता ही नहीं थी। हमारे मिल के सारे मजदूरों का एक संगठन होता जो हमारे आदेशों पर चलने के लिये तैयार रहता। हम उससे कहते काम बन्द करने के लिये तो हिन्दुस्तान की सारी मिलें बन्द हो जातीं। अंग्रेज हिन्दुस्तान का बना माल काम में नहीं ला सकता था। अगर रेल के कर्मचारियों को हमने संगठित कर लिया होता तो बिना पटरियाँ उखाड़े ही सारी रेलें रुक जातीं। कैसे हिन्दुस्तान का सामान अंग्रेज बाहर ले जाता? अगर इसी तरह पोस्ट आफिस, टेलीग्राफ तथा अन्य कार्य करने वालों का हम संगठन बना लेते तो अंग्रेजों को भारत मजबूर होकर छोड़ना पड़ता। आज की सभ्यता की वास्तव में मजदूर ही आत्मा है। बिना उसके बड़ी बड़ी मशीनें और फैक्टरियाँ मृत शरीर जैसी हैं। फिर उसे डर किस बात का? न उसके पास मकान है, न धन दौलत। रोज मजदूरी करता है, रोज खाता है। यही एक ढङ्ग था जिसके आधार पर हमको संगठन करना चाहिये था। यही एक मात्र अहिंसात्मक ढङ्ग की क्रान्ति हो सकती थी, लेकिन इसके लिये अनुशासन और संगठन की आवश्यकता है। बिना संगठन के कोई भी कार्य नहीं हो सकता।"

वे कहने लगे, "हाँ, यह तो आप ठीक कहते हैं। वास्तव में इस क्रान्ति के लिये हमने तैयारी बिलकुल नहीं की थी। भावनापूर्ण

भाषणों द्वारा केवल जनता को उत्तेजित करके छोड़ दिया था—न उन्हें संगठित किया था और न उन्हें यही बताया था कि क्रान्ति के काल में और उसके बाद किस रूप में शासन चलाना होगा।"

मैंने कहा, "बेशक; आपका कहना बिलकुल ठीक है! हमें जनता को सब बातें बिलकुल साफ ढङ्ग से बार बार दोहरा कर बता देनी चाहिये थीं। और अगर आगे भी क्रान्ति करनी हो तो जनता को बता देना चाहिये कि वास्तविक रूप में किस प्रकार कार्य करना होगा। अपने उद्देश्य को जनता को बिलकुल साफ ढङ्ग में बता देना चाहिये। धीरे धीरे बे पढ़े लोग भी एक बात को बार बार सुनने से समझने लगते हैं।"

इसी तरह से बहुत देर तक आन्दोलन के बहुत से पहलुओं पर तथा अन्य व्यक्तियों पर बात चीत होती रही। वह शुक्रवार का दिन था। उस दिन सब कैदियों को परेड लगानी पड़ती थी। इसका अर्थ यह था कि उस दिन जेल का सुपरिन्टेण्डेण्ट कैदियों का मुआइना करने आयेगा।

दोपहर को करीब ११ बजे सब कैदी दो लाइनों में बँट गये। अपने सब कपड़े उन्होंने पहिले से धोकर साफ कर लिये थे। अपना फट्टा बिछा कर और उस पर अपना कम्बल तथा अन्य सब कपड़े कायदे से लगाकर उकड़ूँ बैठे थे। उनका तसला, कटोरी भी बिलकुल साफ मँजी हुई एक लाइन में रखी थी।

सुपरिण्टेन्डेण्ट आया। उसके पीछे एक आदमी छत्र जैसा एक बहुत बड़ा छाता लेकर चल रहा था। दो कैदी बगल में पङ्खा झलते चल रहे थे। बाकी जेल के सब अफसर और वार्डर अपनी वर्दी पहिने हुए उसके पीछे पीछे चल रहे थे। वास्तव में एक पूरा जुलूस था, बन्द कैदियों पर रोब जमाने के लिये।

जमादार ने चिल्ला कर कहा, "एक........दो......." और सब कैदियों ने खड़े होकर हथेली बजाई। यह इसलिये था कि हथेली

बजाने से यह मालूम हो जाय कि जितने कैदी वहाँ मौजूद हैं उन सब के हाथ खाली हैं, कोई डरने की बात नहीं। उसके बाद सुपरिटेण्डेण्ट उस कतार में से होता हुआ निकला, जुलूस सहित। जिसका सामान ठीक नहीं था, उसके सामने रुका, उसका नाम पूछा और उसके लिये सजा लिख दी। इस प्रकार जेल में यह परेड हर पन्द्रह दिन के बाद होती है। उस समय जिन लोगों की शिकायत करनी थी उनकी शिकायत की गई और उनको उसी समय सजा भी लिख दी गई।

उस दिन किसी व्यक्ति ने सुपरिन्टेण्डेन्ट से जेल के अन्य किसी अफ़सर के बारे में कुछ शिकायत की। सब के सब लोग उसको भयंकर दृष्टि से देखने लगे। और साहब ने कहा, "वैल, तुम काम नहीं करता होगा। काम ठीक करो, तुमसे कोई कुछ नहीं कहेगा।" और फिर वह आगे बढ़ गया था

सुपरिन्टेण्डेन्ट के चले जाने के बाद सब कैदी वहाँ से चल दिये। जिस कैदी ने साहब से शिकायत की थी उसे रोक लिया गया। दो तीन वार्डर थे और तीन चार नम्बरदार! उस कैदी को वे लोग दीवार के सहारे एक कोने में ले गये। वहाँ जाकर उन्होंने उसे ज़मीन पर डाल दिया। वह चिल्ला रहा था, जमादार के हाथ जोड़ रहा था, "हज़ूर मुझे माफ़ कर दीजिये, अब कभी ऐसा नहीं होगा।" और जमादार दूसरे नम्बरदारों से कह रहा था, "डालो, साले को ज़मीन पर; उलटा करो। हरामज़ादा, शिकायत करने चला था।"

इसके बाद उन्होंने उसे ज़मीन पर चित लेटा दिया। दो आदमियों ने उसके पैर आसमान की तरफ उठा दिये और बाकी दो नम्बरदारों ने और जमादारों ने दोनों हाथों से मोटे डण्डे को पूरी ताकत लगा लगा कर उसके पैरों के तलवे पर मारना शुरू किया। वह बहुत जोर से चिल्ला रहा था और वे जोर से मारते थे। तलवों पर इसलिये मार रहे थे कि चोट तो गहरी पहुँचे; मगर, अगर वह

फिर शिकायत करने लगे तो कहीं चोट के निशान भी न दिखाई पड़ें। इस तरह से पीटने से बहुत दर्द होता है; लेकिन, शरीर पर पीटने के बाद दिखाई देने वाला कोई चिह्न नहीं रह जाता।

इसी प्रकार जेल में आतङ्क की स्थापना की जाती है। उस दिन बहुत से लोग जेल वालों की ज्यादती की बातें बताते रहे। कैसे कैसे लोगों को दूसरी जेलों में पीटा गया, कैसे कैसे लोगों को जलील किया गया। एक व्यक्ति ने अपना शरीर उघाड़ कर दिखाया। उस पर बेंतों के निशान अब भी बने हुए थे; हालाँ कि कई महीनों पहिले उसे बेंत मारी गई थी।

यह बेंतों की सजा जेल की सबसे भयङ्कर सजा है। जेल में जो उनकी बातों को नहीं मानता उस पर दफा ५२ चला दी जाती है। इस दफा के अनुसार अन्य सजाओं के साथ साथ बेंतों की सजा भी कैदियों को भुगतनी पड़ती है।

ब्लैक बोर्ड जैसी तीन पाँव की एक तख्ती होती है। इसके निचले हिस्से में कड़े होते हैं। जिस कैदी को सजा देनी होती है उसकी टाँगों को चौड़ा कर उनमें पहिले कड़े डाल दिये जाते हैं। इसके बाद हाथों में हथकड़ियाँ डाल कर हाथों को सिर के ऊपर खींच कर ऐसा बाँधा जाता है कि आदमी ज़मीन से करीब करीब अधर हो जाता है। फिर कमर के पीछे से एक चमड़े का पट्टा जैसा लाकर बाँधा जाता है जिससे वह हिल न सके।

बेंतों की सज़ा देने के लिये उसे बिलकुल नंगा कर दिया जाता और चूतड़ों पर लोशन से लिपटा गाज रख दिया जाता है। जिस बेंत से पीटा जाता है उसे २४ घंटा पहिले पानी में भिगो देते हैं। फिर जेल का भंगी दूर से दौड़कर पूरी ताकत से लपलपाती बेंत का प्रहार नग्न चूतड़ों पर करता है। बेत गोश्त में गड़ जाती है। उसको वह साधारणतः उठाता नहीं, बल्कि एक ओर को खींचता है और उसके साथ मांस के खींचने से असह्य पीड़ा होती है। प्रायः

लोग चार पाँच बेंत लगने के बाद पीड़ा से बेहोश हो जाते हैं। उसके बाद बाकी बेंत बेहोशी में ही उनके शरीर पर पड़ती हैं।

इस प्रकार कुछ ही दिनों में जेल की ऐसी बातें देखने और सुनने को मिलीं कि जिनके विषय में पहिले कभी सुना भी नहीं था। और ये बातें, जेल की चहार दीवारों के बाहर जाने भी नहीं पातीं। धीरे धीरे साथियों में मिलकर अब हवालात का ख्याल ही बिलकुल दिल से निकल गया था। यहाँ पर बातचीत में समय कट जाता था। कुछ साथी छिपाकर अपने साथ कुछ किताबें ले आये थे, उनको पढ़ कर कुछ समय बीतता। अगर तकलीफ़ भी होती तो सब मिलकर उसे सहते। हवालात में तो बिलकुल अकेले पड़ गया था, वहाँ तो मानसिक क्लेश और अज्ञात भविष्य के विषय में चिंतित रहने में ही बहुत सा समय कट जाता था।

यहाँ कम से कम अपनी बात को सुनने वाले तो और साथी थे। मैं चाहता था कि अपने बारे में अपने एक साथी को लिख दूँ कि मैं कहाँ पर हूँ। एक नवयुवक साथी भी जेल में मिल गया था। मैंने उससे कहा, "मैं एक खत किसी तरह एक मित्र के पास भेजना चाहता हूँ; बताओ कोई इन्तज़ाम कर सकते हो?"

उसने कहा, 'हाँ, भेजा जा सकता है। कोई ऐसी बात मत लिखना जिससे पुलिस वाले कोई नाजायज फ़ायदा उठा सकें। मैं तुम्हारा ख़त वार्डर के हाथ भेज दूँगा। कुल आठ आने का ख़र्चा है। वह बाहर डाल आयेगा।'

मैंने लिखने से पहिले कई बार सोचा कि कहीं पुलिस वालों के हाथ पड़ गया तो अवश्य मेरे साथी को पकड़ लेंगे। लेकिन फिर सोचा कि मैं तो ऐसे एक मित्र को लिख रहा हूँ जो मेरे आंदोलन के क्षेत्र से बहुत दूर रहा है और फिर वह तो बचपन से मेरा मित्र है। इसके अतिरिक्त कोई विशेष बात भी तो नहीं लिख रहा हूं। यही सब सोचकर मैंने पत्र लिख ही डाला। पत्र लिखने के बाद मैं अपने नये

साथी के पास ले गया उसने कुछ लिफ़ाफे और कुछ पोस्ट कार्ड मँगाकर रख छोड़े थे।

अब सवाल आया आठ आने पैसे का। उसके पास उस समय एक भी पैसा नहीं था। वह ज़रा सकुचाया और कहने लगा, "तुम्हारे पास कुछ दाम तो नहीं होंगे ?"

मुझे मौलाना के दिए हुए रुपयों का ख्याल आया। कोट के कालर की सीवन खोलकर मैंने दो रुपयों के नोटों को निकाला। नोट धीरे धीरे खिसक कर बिलकुल नीचे पहुँच गए थे। वास्तव में मौलाना की बात ठीक थी—'शायद कभी तुम्हें जरूरत पड़े।'

नोट लेने के बाद वह बोला, 'अगर जमादार को एक रुपया दे दिया तो वह एक पैसा भी वापिस नहीं करेगा और उससे मांग भी नहीं सकते।' उसने एक दो साथी से पूछा, लेकिन किसी के पास भी टूटे हुए पैसे नहीं थे। एक साथी ने एक कैदी का नाम लेकर बताया कि उसके पास पैसे मिल सकते हैं। हम लोग उस कैदी के पास गये। वह कत्ल की सज़ा में आया था दस साल के लिये।

उसने नोट लेने के बाद कहा 'अच्छा बाबू, अभी देता हूँ।' इसके बाद उसने अपने गले के पास ज़रा सा हथेली से दबाया और चांदी की चवन्नियों की एक ढेरी बाहर निकाल ली। वे लगभग २० चवन्नियाँ थीं। देखकर बड़ा ताज्जुब हुआ। मैंने पूछा, "तुम कहाँ रखते हो ?"

उसने ज़बान उठाकर दिखाया कि गले में नीचे की तरफ़ एक गड्ढा है और वह इस प्रकार इतनी चवन्नियाँ वर्षों रखे रहता है। उसने बताया कि कैसे उसने शीशे की गोलियाँ रख रख कर यह जगह बना ली थी क्योंकि जेल में और कहीं तो पैसे रख नहीं सकते। एक आध बार कैदियों ने जूतों के तलों के बीच में नोट रखने का भी प्रयत्न किया लेकिन जेल वालों ने तले उखड़वाकर वे भी

नोट उन लोगों से छीन लिए थे। केवल यही एक ढंग था जिससे कुछ पैसे उनके पास रह जाते थे।

× × ×

जेल में आए हुए मुझे लगभग १० दिन हो गये थे लेकिन अभी ठीक ढंग से निश्चित नहीं हो पाया था कि यहीं रहना है। मुझसे पहिले जो साथी जेल में आए थे उन्होंने बताया कि यहाँ से भी लोगों को दुबारा हवालात ले जाते हैं और सम्भवतः मुझे भी जाना पड़ेगा। इस लिए मैं भी किसी चीज़ पर विशेष ध्यान नहीं दे रहा था। बारिक में भी केवल सोने के लिए जाता था। कपड़े भी यों ही पड़े रहते थे। अन्य लोग तो यहाँ निश्चिन्त होकर रहने लगे थे।

मेरी सीट बारिक में जँगले के करीब थी। उस दिन सब लोग पास में बैठे हुए बात कर रहे थे। सम्भवतः बातें पाल ब्रन्टन की लिखी पुस्तक "अज्ञात भारत की खोज" पर हो रही थीं। मैं जँगले के बिलकुल पास बैठा था। जँगले के ठीक सामने ही हमारा रसोई घर था।

इसी समय पूर्णिमा का चन्द्रमा धीरे धीरे आकाश में चढ़ रहा था। रसोई घर के छप्पर के कोने पर वह धीरे धीरे उठा। बे मौसम भटकते हुए बादल के टुकड़े ने, न जाने कहाँ से आकर, उसको थोड़ा सा ढक लिया। चाँद फिर कुछ ही मिनट के बाद छप्पर की आड़ में हो गया था। केवल उसका प्रकाश ही पृथ्वी पर दिखाई पड़ता और उस प्रकाश में घूमने वाले जेल के जमादार ही उसका उपभोग कर सकते थे।

चन्द्रमा को जीवन में हजारों बार देखा है। शरद् की पूर्णिमा को मनाने के लिये कई बार सारी रात्री जमुना पर नाव में बैठ कर चन्द्रमा को और उसके प्रकाश से स्वर्ण का मुकुट पहिने जैसी लहरों को घण्टों देखा है। शाहजहाँ के प्रेमोद्गार ताजमहल को पूर्ण चन्द्र के प्रकाश में एक दूसरे के सहकारी के रूप में भी देखने का अवकाश

मिला है। किन्तु, उस दिन का वह चन्द्रमा कितना सुन्दर था। सम्भवतः जीवन भर उसे नहीं भूल सकता। चन्द्रमा के छिप जाने के पश्चात् भी उस दिशा में देखने को मन चाहता था। बहुत काल पश्चात् आज थोड़ी देर के लिये जो पूर्ण चन्द्र देखने के लिये मिला सम्भवतः यही 'अभाव' उसके सौंदर्य वृद्धि का कारण हो।

उस दिन दोपहर को खाना खाने बैठा ही था कि चुन्था डिपुटी जेलर वहाँ आ पहुँचा। आकर उसने कहा, "चलिये, आपका बुलावा आ गया।"

मैंने पूछा, "कहाँ जाना होगा?"

उसने कहा, "शायद आपको हवालात ले जा रहे हैं। यहाँ के पुलिस वाले आये हैं। बाकी तो हम लोगों को भी पता नहीं रहता।"

पास में बैठे हुए एक व्यक्ति ने कहा, "खाना खा लो, कोई जल्दी नहीं है। इतमीनान से खाना खाकर जाना।"

मैं खाना खाने लगा किन्तु फिर से चिन्ता होने लगी थी। एक बार तो उस भयङ्कर स्थान से राम, राम करके निकल आया हूँ। अबकी बार फिर उसी जगह जाना है। खाना खाते में डिपुटी ने कहा "चलिये, जल्दी कीजिये, वे लोग आपका इन्तजार कर रहे होंगे।"

मुझसे बड़ी उम्र के एक साथी ने उसका उत्तर देते हुए कहा, "डिपुटी साहब, खाना तो खा लेने दीजिये। वहाँ तो वे लोग खाना देंगे नहीं, ऐसी क्या जल्दी है?"

भूख भी खत्म हो गई थी। मैं उठ बैठा। बारिक के अन्य लोगों को जब पता लगा तो वे सब वहाँ इकट्ठा हो गये थे। एक साथी ने जेल के कपड़ों को अलग बाँध दिया, उन्हें लौटाना था। उसमें से एक कपड़ा खो गया था, एक साथी ने अपना कपड़ा देकर उसे पूरा कर दिया। एक साथी ने मेरा बिस्तरा बाँध दिया। उसी बीच में दो एक साथी मुझे बारिक से बाहर ले जाते हुए कहने लगे, "चलो, यह सब काम दूसरे कर लेंगे। तुमसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं।

जेल की दीवार के सहारे घूमते हुए वे मुझे बताने लगे कि उस हवालात में तुम्हें वह व्यक्ति मिलेगा, फलाँ व्यक्ति इस ढङ्ग का है...... अगर वह तुमसे सवाल पूछने आये तो तुम इस तरह से बात करना, वह व्यक्ति इस ढंग का है, उससे इस ढंग की बातें करना.......... ।

इस प्रकार मुझसे पहिले जो व्यक्ति हवालात में रह आये थे, उन्होंने अपने सारे अनुभव तथा उनकी उपयोगिता मुझे बताई। उनकी आधी बातों को समझता हुआ केवल इतना कहता रहा, 'अच्छा, ठीक है। हाँ, ऐसा ही करूँगा।' बाद में चलते समय एक साथी ने कहा, 'देखो, बिना वजह किसी से झगड़ा मत करना। जहाँ तक हो वहाँ तक समझदारी से ही काम करना।'

इसके बाद सब लोगों से नमस्कार करके मैं चल दिया। वे लोग आखिरी डंडे तक मुझे पहुँचाने आये। उसके आगे जाने की इज़ाजत नहीं थी। उन सबको फिर एक बार नमस्कार करके मैं चल दिया। चिंतित, नई आपत्ति के भय से कुछ आतंकित होकर।

× × ×

———

अध्याय ५

जेल से बाहर निकालते वक्त एक बार फिर से तलाशी ली गई। फाटक के सामने पुलिस की एक ट्रक खड़ी हुई थी। साथ में पाँच छः सिपाही और दो सी० आई० डी० के दारोगा थे। हम लोग वहाँ से हवालात के लिये चला दिये। रास्ते में सी० आई० डी० वाले ने जेल के दो एक साथियों के बारे में पूछा। इसके बाद कोई बात चीत नहीं हुई। फिर से हवालात में बंद होने की चिंता से परेशान था। बात करने में मन नहीं लग रहा था। इतने दिनों तक साथियों के बीच में रहने के कारण हवालात को बिलकुल भूल सा गया था। वहाँ पर जो तकलीफ़ होती थी सब हँस बोल कर सह लेते थे। लेकिन, हवालात में तो बिलकुल अकेले रहना पड़ता है। वहाँ तो मुसीबतों की चिंता ही इतना परेशान करती थी कि प्रायः सभी शारीरिक कष्ट उसके सामने तुच्छ हो जाया करते थे।

हवालात में बंद होने से पहले फिर एक बार खाना तलाशी लीगई। उसके बाद वहाँ पर एक हवालात की कोठरी में बद कर दिया गया।

यह कोठरी दिल्ली की हवालात की लगभग आधी होगी। इसमें अन्दर रोशनी का इन्तज़ाम नहीं था। बाहर बरामदे में लगे बल्ब का थोड़ा सा छितरा हुआ प्रकाश ही कोठरी में पहुँच पाता था। कोठरी में बहुत सीलन थी। कोने में किश्ती जैसी लोहे की एक चीज़ रखी हुई थी जो पेशाब और पाखाना दोनों के लिये काम में लाई जाती थी। एक आदमी उस कोठरी में पहले से ही बंद था। शायद किसी चोरी में पकड़ा गया था।

शाम को कोतवाली के मुंशी ने आकर कहा, "आपको दिन भर में तीन आने पैसे मिला करेंगे। आज एक वक्त के १½ आने का आप जो चाहें मँगवा सकते हैं।" मैं जानता था कि हजरतगंज में १½ आने का क्या मिल सकता है। शायद मुश्किल से एक रोटी या डेढ़ कचौरी। मैंने कहा, "आप रहने दीजिए, आप यह पैसे भी अपने पास रखिये। मुझे कोई चीज़ मँगानी नहीं है।"

वह खड़ा हुआ कुछ सोचता रहा, उसके बाद बोला, 'देखिये, आज मैं ऐसा किये देता हूँ कि आपको दिन भर के तीन आने पैसे दिये देता हूँ। इसके बाद मैं सी० आई० डी० के साहब को फोन कर दूँगा। अगर, वे चाहेंगे तो आगे से जैसा ठीक समझेंगे वैसा करेंगे।"

उसने एक बूढ़े आदमी को भेज कर तीन पूरियाँ मेरे लिये मँगवा दीं। उस कोठरी के गन्दे वातावरण में खाने को बिलकुल जी नहीं चाहता था; किन्तु, इसके सहने की आदत डालनी थी। खाना खाने के बाद जँगले पर जाकर मैंने पानी पिया। यहाँ पर भी पानी सन्तरी बाहर से ही पिलाता था।

उस रात को करीब १० बजे दो शराबी लाकर बन्द कर दिये गये। बहुत देर तक तो वे आपस में लड़ते रहे। इसके बाद उनमें से एक ने कै करनी शुरू कर दी। शराब युक्त उलटी की बदबू के साथ साथ कोने में रखी नाव के पाखाने की बदबू उस कोठरी के सारे वायु-मण्डल में इस प्रकार व्याप्त हो गई थी कि साँस लेना भी कठिन हो गया। मुँह जँगले से बिलकुल सटा कर साँस लेते हुए मैंने वह रात काटी। कई बार ऐसा जी मचलाया कि उलटी मालूम होने लगी।

× × ×

दूसरे दिन सुबह को वहाँ के इन्सपेक्टर ने सिपाही से कहा, "ये सियासी कैदी हैं। इन्हें बिलकुल अकेले कहीं बन्द करो।"

उस हवालात की कोठरी के सामने एक और कोठरी थी, वही मेरे लिये निश्चित की गई। उस कोठरी में बहुत सी साइकिलें भरी

हुई थीं। उन साइकिलों को एक के ऊपर एक रखकर थोड़ी सी जगह निकाली गई। उसी जगह में मैंने अपना बिस्तर लगा लिया।

दोपहर को लगभग ११½ बजे वहाँ का मुंशी आया। वह कहने लगा, "मैंने साहब को फ़ोन किया था; लेकिन वे तो कहीं बाहर गए हुए हैं। पता नहीं कब तक वापस आयें। ऐसी हालत में बड़ी मजबूरी है। हम तो कायदे के बाहर जा नहीं सकते। बताइये, आपके लिये १½ आने का खाने के लिये क्या मँगवा दिया जाय ?"

मैंने कहा, "मुँशी जी, आपको परेशान होने की जरूरत नहीं। मैं तो कुछ भी नहीं खाऊँगा। आपके साहब जब आ जायें तो आप उनको फोन कर दीजियेगा और उसका वे जो जवाब दें वह मुझे बता दीजियेगा; बस।"

उसके बाद थोड़ा सा पानी पीकर मैं लेट गया। शाम को फिर एक बार वह मुँशी आया। आकर वह जंगले पर खड़ा हो गया। कुछ देर खड़ा रहने के बाद बोला, "आप से हम क्या बतायें; हम खुद मजबूर हैं। हमारी खुद इतनी थोड़ी तनख्वाह है कि मुश्किल से पेट भर पाता है। कहिये, आप कहें तो मैं अपने पास से आपके लिये कुछ ला दूँ।"

मैंने कहा, "मुँशी जी! आपकी इस मेहरबानी के लिये मैं बेहद शुक्रगुजार हूँ। आपको परेशान होने की जरूरत नहीं। आप तो वही कीजिये जिसका आपको हुक्म मिला हुआ है। हमारी तकलीफों को आप कहाँ तक दूर करेंगे। हम तो इन सब को सोच समझ कर ही चले थे।"

वह फिर वहाँ से धीरे धीरे चला गया था। इसी प्रकार मैंने तीन दिन काटे। पानी पीने से खाली पेट में बहुत दर्द होने लगता था। दिन भर मैं लेटा रहता था और हाल चाल पूछने वाला भी वहाँ कोई नहीं था। तीसरे दिन जब नित्य क्रिया से लौट कर वापिस आ रहा था तो सिर चकराने लगा। कई बार मैंने मन में कहा, क्या फायदा इस

भूखे मरने से! ये लोग जो देते हैं वही क्यों न ले लिया जाय। जिंदा रहना बहुत ज़रूरी है। शरीर के निर्बल होने से मन भी निर्बल हो सकता है, लेकिन इस तर्क को आत्माभिमान की भावना कभी भी प्रमुख नहीं होने देती थी।

तीसरे दिन शाम को दो आदमी आकर कोठरी के जंगले के सामने खड़े होगये। उनमें से एक खूब लम्बा, गोरा व्यक्ति था और दूसरा साधारण कद और मोटाई का व्यक्ति था। छोटे व्यक्ति ने लम्बे कद वाले से, मेरा नाम, इलाहाबाद में मेरा रहने का स्थान तथा अन्य बातें बताते हुए पूर्ण परिचय दिया।

अपने विषय में परिचय सुनकर मैंने ध्यान पूर्वक उसकी तरफ़ देखा कि यह कौन व्यक्ति है जो मेरे बारे में पूरी पूरी जानकारी रखता है। अपनी तरफ़ ध्यान आकर्षित हुआ देखकर वह अपना परिचय देता हुआ कहने लगा, "मैं हूँ नासिर खाँ; डी० एस० पी० सी० आई० डी०। कहिये, आपको कोई तकलीफ़ तो नहीं?"

मैंने कहा, "तकलीफ देने के लिये तो लोगों को आप यहाँ लाते ही हैं! फिर उसके बारे में शिकायत की गुञ्जायश ही कहाँ है! आप यहाँ रोजाना खाने के लिये क्या देते हैं?"

मेरे उत्तर से वह जरा सकुचाकर कहने लगा, "यहाँ का कायदा तो यह है कि दिन भर में सिर्फ तीन आने दिये जाते हैं। लेकिन मैंने कह रखा है कि दफा १२६ के जो लोग आयें उन्हें ६ आने दिये जायँ क्योंकि वे लोग यहाँ बहुत दिन रहते हैं और आज कल के जमाने में तीन आने में कोई रह नहीं सकता। हाँ! आपके बारे में गलती हो गई। मैं बाहर चला गया था और मुँशी तो यहाँ के कायदे के हिसाब से ही सब कुछ करता है। आज मैंने उससे कह दिया है। खैर, उसको छोड़िये, अगर आपको किसी चीज की जरूरत हो तो बताइये। कहिये, आपके लिये कुछ फल वगैरह का इन्तजाम कर दूँ?"

मैंने अंग्रेजी में कहा, "इस मेहरबानी के लिये आपका शुक्रिया।"

मुझे किसी विशेष अनुग्रह की आवश्यकता नहीं है। आपका जो कायदा हो, आप वही कीजिये।"

"अच्छा, मैं कल फिर आप से मिलूँगा।" कह कर वह वहाँ से चला गया।

उसके चले जाने के बाद मैं बहुत देर तक सोचता रहा कि ये लोग सब चीजें जान बूझकर परेशान करने के लिये करते हैं, लेकिन बात चीत में ऐसा प्रदर्शित करते हैं जैसे स्वाभाविक रूप में अनजाते सब कुछ हो गया हो।

उस दिन थोड़ी सी दही को पानी में घोल कर मैंने पिया। अगले दिन शाम वह सवालात के लिये आ पहुँचा।

बाहर बरामदे में ही एक मेज और दो कुर्सियाँ डाल दी गई थीं। एक कुर्सी पर मैं बैठा था और एक पर वह। हथकड़ी में बँधी रस्सी को उसने अपनी कुर्सी के हत्थे से बाँध दिया था। बड़ा अजीब सा लगता था।

उसी समय एक टामी वहाँ पर आ गया। उसने अपनी शिकायत करनी शुरू कर दी। बाहर जाने से कुछ दिनों पहिले एक स्त्री थी जिसको वह अपनी स्त्री बता रहा था, यहाँ छोड़ गया था। अब वह पाँच महीने बाद लौट कर आया तो उस मकान में रहने वाले लोग उसे अन्दर नहीं जाने देते थे। वह पुलिस की मदद से अपनी स्त्री को वापिस लेना चाहता था। इतना कहने के बाद वह खामोश हो गया और उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा।

सी० आई० डी० के डी० एस० पी० ने कहा, 'मैं यहाँ का दारोगा नहीं हूँ। तुम्हें रिपोर्ट के लिये दारोगा से मिलना चाहिये!"

उत्तर सुनने के बाद वह चुपचाप वहाँ खड़ा रहा। इसके बाद उसने अपना सिगरेट केस निकाल कर पहिले सी० आई० डी० वाले की तरफ और फिर मेरी तरफ बढ़ाया।

सिगरेट निकालने के पहिले अँग्रेजी में मैंने उससे कहा, अँग्रेज, तो मुझको अपना दुश्मन समझते हैं और तुम मुझे सिगरेट दे रहे हो?"

सिगरेट केस हाथ में लिये हुए वह बोला, "यह सब कुछ नहीं, सिर्फ छः महीने; इसके बाद छूट जाओगे।"

मैंने उसकी सिगरेट लेकर पीनी शुरू की, उसने ही दियासलाई से उसे जलाया भी। वह थोड़ी देर बाद वहाँ से चला गया। उसके बाद हम दो ही वहाँ फिर रह गये। उसने मुझसे कहा, "कहिये, अपने बारे में कुछ बताइये कि आपने क्या क्या कर डाला।"

उसकी बात का कोई उत्तर न देकर मैं खामोश बैठा रहा। उसने दो चार बातें और पूछीं उसका भी मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। लगभग २० मिनट तक हम लोग इसी प्रकार बैठे रहे। उसके बाद वह बोला, "आप तो कुछ बोलते ही नहीं, क्या आप मुझ से नफरत करते हैं?"

उसको उत्तर देते हुए मैंने कहा, "नफरत तो मैं दुनिया में किसी इन्सान से नहीं करता और आप तो हिन्दुस्तानी हैं। जेल में आपके बारे में मुझे मालूम हुआ था कि आप चतुर और सज्जन व्यक्ति हैं।"

अपनी तारीफ सुन कर वह जरा सा सकुचाया किन्तु उससे वह बहुत खुश हुआ। वह अपने बारे में स्वयं बहुत सी बातें कहने लगा, "मैंने ही स्वराज्य-भवन की तलाशी लेकर, अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के कागजों को पकड़ा था। मैं इलाहाबाद में १० साल रहा हूँ। वहाँ के बच्चे बच्चे से मैं वाकिफ हूँ। मैंने ही योगेश बाबू के केस में जाँच की थी। मैंने बहुत से आदमियों के खत पकड़े हैं। बड़े मजे के खत वे थे।" इसी तरह की बहुत सी बातें वह बताता रहा।

उस दिन करीब दो घण्टे अपनी तारीफ करते हुए उसने बिता दिये। उसके बाद बन्द करने से पहिले उसने फिर पूछा, "कहिये आप को किसी तरह की तकलीफ तो नहीं।"

मैंने कहा, "जी नहीं, कोई नई तकलीफ नहीं है।

× × ×

यहाँ पर थाने में खाना बनाने का कोई इन्तजाम नहीं था। वहाँ का एक बूढ़ा, दाढ़ीवाला, खिदमदगार मेरे लिये कहीं से ४॥ आने का खाना लाता था। इस खाने में तेल के पराठे होते थे और बहुत छोटे छोटे आलू की तरकारी। पराठे बेझड़ के आटे के थे और उनको रुई के फाये से तेल लगा कर सेंका जाता था। आधे से ज्यादा भाग उनका प्रायः कच्चा रहता था। आलुओं को छीला नहीं जाता था, सम्भवतः छीलने के बाद अवशेष कुछ रह ही न जाता। यही खाना लगातार खानेको मिला।

उस खाने को देख कर एक बहुत पुरानी घटना याद आगई। उस समय से लगभग ६ साल पहिले, जब मैं कालिज में था तो एकदिन मैस बन्द होगया था। हम लोग शहर में खाना खाने के लिये गये। वहाँ चौराहे पर, एक तख्त पर गन्दी सी दुकान लगाये हुए, एक आदमी मैले से कपड़े में बैठा हुआ ऐसे ही पराठे रुई के फाये से तेल लगा कर सेंक रहा था। यहाँ पर, गाँव से आने वाले गरीब लोग, खाना लेकर खाते थे। उसको पराठे बनाते हुए देख कर मैंने अपने साथी से व्यंग्य पूर्वक कहा था, "महेश! कहो, पराठे खाओगे?" और उसने उसका उत्तर उपेक्षापूर्ण हँसी हँस कर दिया था। पराठे वाले ने भी मेरे शब्द सुन लिये थे। व्यंगपूर्ण कटुता से उसने कहा था, "बाबू जी! जब कलेजे में लगती है तो ये ही अच्छे लगते हैं।"

और आज, इतने वर्ष पश्चात उसके शब्दों का वास्तविक अर्थ समझ में आया था। हाँ, उन पराठों के आने में भी जब देरी होती तो कष्ट होता था।

उस दिन, शाम को वह लगभग ७॥ बजे वहाँ आया। बाहर बरामदे में ही बैठने के लिये मेज और कुर्सी पड़ी हुई थी। कोतवाली के लोग वहाँ से आ जा रहे थे। उसने फिर मुझसे प्रश्न पूछने शुरू किये। आज वह अपने साथ एक फाइल लाया था। जिसमें किसी साथी का दिया हुआ बयान था और दो कार्ड उसके पास थे जिनमें उसने छोटे छोटे शब्दों में कुछ मुख्य विषय लिख छोड़े थे।

उसके कई बार प्रश्न करने पर मैंने कहा, 'आप क्यों बेकार को परेशान होते हैं! दिल्ली में मुझे उन लोगों ने १ महीना हवालात में रखा था; वहीं से आप मेरा बयान क्यों नहीं मँगा लेते?"

मेरी बात सुनकर उसने अपना सिर ऊपर उठाया और बोला, "माफ कीजिये; वहाँ के लोगों ने यह लिखा है, कि आपने जो कुछ कहा वह सफेद झूठ है।"

इसके बाद हम लोग फिर कुछ देर तक खामोश बैठे रहे। वह जेल में बन्द अन्य साथियों के बारे में बहुत सी बेतुकी बातें करता रहा। कहने लगा "जेल से लोग अपने घरवालों को वार्डर के हाथ खत भेजते हैं। वे समझते हैं कि उनके खतों को कोई पढ़ता ही नहीं। आखिर को वार्डर भी तो सरकारी नौकर है। अगर हम उसे कोई हुक्म दे दें तो वह टाल नहीं सकता। हम खुद यह चाहते हैं कि लोग इस तरह से खत भेजें। इसमें इस वार्डर को पैसे भी मिल जाते हैं और हमारा भी काम चल जाता है।"

इसके बाद वह आन्दोलन में काम करने वाले बहुत से साथियों की बुराई करते हुए कहने लगा, "इस आन्दोलन में तो लोगों ने खूब रुपया खर्च किया है और कुछ लोगों ने खूब जोड़ा भी है; कहिये आपने भी कुछ इकट्ठा किया या नहीं?"

मैंने कहा, "हाँ! मैंने तो काफी जमा कर लिया।"

वह तनिक उत्सुक होकर बोला, "कितना रुपया आपने जमा किया?"

मैंने कहा, "बहुत जमा किया, चलो चल कर देख लो; हवालात में जो बिस्तर रखा हुआ है इसी में सब कुछ बँधा हुआ है!" मेरी बात को सुनकर वह जरा सकुचा गया। मैंने उसको आड़े हाथों लेते हुए कहा, "पता नहीं, सब पुलिस और सी० आई० डी० वाले हमेशा रुपया और वासनापूर्ण प्रेम की बातें क्यों करते हैं! क्या आप लोगों को इसके अतिरिक्त सोचने के लिये और विषय नहीं है?"

वह कुछ अप्रतिभ होकर अपना बचाव करते हुए कहने लगा, "नहीं, यह बात नहीं है। हम, लोगों की कुछ ऐसी बातें जानते हैं जिनको सिवा हमारे शायद और कोई नहीं जान पाता।"

उसके बाद फिर थोड़ी देर खामोश रहने के बाद वह बोला, "आप लोगों को भी क्या सूझी थी; सबके सब यू० पी० के इनामशुदा लोग दिल्ली में जाकर पकड़े गये ! आप लोगों ने यू० पी० वाले सी० आई० डी० विभाग की नाक कटवा दी।"

मैंने कहा, "जानबूझ कर तो कोई अपने को पकड़वाता नहीं है। और फिर, हम लोग आसानी से दिल्ली में पकड़े भी नहीं जाते। लेकिन, क्या करें जब हमारे साथियों ने ही धोखा दिया तो हम क्या कर सकते थे ! आज के हिन्दुस्तान में गद्दार होते कितनी देर लगती है ! कौड़ी के तीन खरीदे जा सकते हैं।"

वह मेरी बात सुनकर जरा शर्माया। वास्तव में उसके ऊपर भी उस निन्दा की प्रति छाया पड़ती थी। थोड़ी देर बाद उसने दो कार्ड निकाले और उनको दिखाकर कहने लगा, 'देखिये, इन पर मैंने आपके बारे में संक्षिप्त में जो कुछ लोगों ने बताया लिख छोड़ा है। हमारे यहाँ इसी तरह से प्रत्येक व्यक्ति के नाम के कार्ड रहते हैं"

फिर उसने पढ़ कर बताना शुरू किया कि किस व्यक्ति ने मेरे बारे में क्या क्या कहा था। मैं वास्तव में इस चीज से डर रहा था कि दिल्ली के सी. आई. डी. वालों ने मेरे साथ जो कागज पकड़े थे, उनके विषय में यह न पूछना शुरू कर दे। उनमें बहुत सी बातें थीं जिनका उत्तर देना कठिन होजाता। लेकिन दिल्ली वालों ने ये कागज यहाँ भेजे ही नहीं थे।

उस रात को लगभग १० बजे उसने मुझे बन्द करने के लिये चपरासी से कहा।

× × ×

दिल्ली की हवालात में एक दो साथी मिल गये थे इसलिये बात

करने का मौका मिल जाता था लेकिन यहाँ पर तो कोई बात करने वाला भी नहीं था। इसके अतिरिक्त यहाँ रोजाना तेल के पराठे खाने से तबियत बहुत खराब रहती थी। आलुओं के छिलके एक दिन दाँत में उलझ गये थे। उसके कारण दाँत में बहुत दर्द होने लगा। मेरा बिस्तर बिलकुल जंगले के पास था। आने जाने वाले लोग सब उधर से देखते हुए गुजरते थे यह भी बड़ा भद्दा लगता था। लेकिन सारी कोठरी में तो साइकिलें भरी हुई थीं। दिन में भी खूब गर्मी होने लगी। सूर्य्य की धूप सीधे जँगले पर आती थी और जँगले पर सन्तरी कोई कपड़ा टाँगने नहीं देता था।

दिल्ली में मैंने कई बार प्रयत्न किया था कि किसी तरह से, उन लोगों को समाचार भेज दूँ जिनका कुछ संकेत मेरे पास निकले कागजों में था। किन्तु, इसमें, मैं सफल नहीं होपाया था। यहाँ आकर, पहिले दिन से ही मैं सोच रहा था कि किस प्रकार समाचार भेजा जाय। पोस्ट आफिस से खत भेजने से तो अवश्य ही वे लोग संकट में पड़ जायँगे। लेकिन कोई रास्ता नजर नहीं आरहा था।

उस दिन, पहरा देने वाला सन्तरी आकर जंगले पर खड़ा होगया थोड़ी देर खड़े रहने के पश्चात वह मेरे विषय में पूछने लगा। मैंने उसे अपना थोड़ा परिचय दिया। उसका बात करने का ढंग बहुत सभ्य था। मुझे अचम्भा होरहा था कि वह ऐसी बातें कैसे कर रहा है। दिल्ली से, यहाँ के सिपाही कम अक्खड़ और कम रूखे थे। बात करने के बाद वह फिर टहल कर पहरा देने लगा।

उसके बाद फिर वह आकर जँगले पर खड़ा होगया। जेल से चलते समय एक साथी ने कुछ सिगरेट मुझे दे दीं थी। उनमें से केवल तीन अब शेष रह गई थीं। उसे जँगले पर खड़ा देखकर, एक सिगरेट उसे देते हुए मैंने कहा, "जमादार साहब, आपके पास दियासलाई तो नहीं होगी ?"

इधर उधर देखने के बाद उसने सिगरेट मुझसे ले ली और

दियासलाई निकाल कर, स्वयं अपने हाथ से मेरी सिगरेट जला दी। सिगरेट में दो तीन दम मारने के बाद वह बोला, "आप लोगों को भी बड़ी तकलीफ उठानी पड़ती है।"

मैंने कहा, "हाँ, गुलाम हिन्दुस्तान में तो ऐसा ही होगा।"

उसके बाद वह वहाँ खड़ा हुआ बहुत सी बातें करता रहा। जब किसी के आने की आहट होती तो वह सिगरेट को हाथ में मुट्ठी के भीतर छिपाकर टहलने लगता और जब फिर एकान्त होजाता तो फिरसे आकर जँगले पर खड़ा होजाता।

अपनी आर्थिक परिस्थिति का परिचय देते हुए कहने लगा, "साहब, मेरे तीन बच्चे हैं, मैं हूँ, मेरी घरवाली है, और तनख्वाह मिलती है कुल २२ रु०। बताइये आजकल के ज़माने में इतनी थोड़ी में कैसे पेट भर सकता है।........." इसी तरह की वह अपनी बहुत सी कठिनाइयों का वर्णन करता रहा। कुछ देर चुप रहने के बाद वह ज़रा सकुचा कर बोला।

"बाबू जी, एक कहावत है, 'गरीबी में आटा गीला' खाने को भी पूरा नहीं पड़ता था और इस पर कल मेरी साइकिल का चिमटा टूट गया। आजकल कम से कम १५) का आएगा। ऐसी हालत में कुछ समझ में नहीं आता क्या किया जाय!"

इतनी देर बाद अब मेरी समझ में आया कि यह नाटक और भूमिका किस उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए की गई थी। जी में आया कि इसको थोड़ा बुरा भला कहूँ; लेकिन, यकायक ख्याल आया, 'नहीं' इससे कुछ काम निकल सकता है। मैंने कहा, "इसमें परेशानी की क्या बात है ! यहाँ देखो, साइकिलों का ढेर लगा हुआ है और इस कोने में साइकिलों के हिस्से पड़े हुए हैं। तुम्हें पैसा खर्च करने की क्या ज़रूरत है ! इनमें से ही एक चिमटा ले लो।"

कोने में पड़े एक चिमटे को उठाकर उसकी तरफ़ बढ़ाते हुए

मैंने कहा, 'लो; ले जाओ, इसे काम में लाओ। आख़िर को यह और किस काम में आयेगा !"

इधर उधर देख कर कुछ घबड़ाते हुए वह बोला, 'नहीं, साहब इसे अभी यहीं पड़ा रहने दीजिये। अगर कोई देख लेगा तो नौकरी से बर्खास्त कर दिया जाऊँगा।" मैंने उस चिमटे को फिर उस कोने में फेंक दिया। जंगले के और करीब आकर उसने कहा, "मैं रात को क़रीब दो बजे आऊँगा तभी आप इसे मुझे दे देना।"

रात को एक बजे से फिर उसकी ड्यूटी थी। करीब दो बजे के उसने धीरे से मुझे जगाया। मैंने आँखों को मलते हुए, लोहे के उस ढेर में से टटोल कर उस चिमटे को निकाल कर उसे दे दिया। वह एक कपड़े में छिपाकर वहाँ से चला गया। पन्द्रह मिनिट बाद वह लौट कर फिर पहरा देने लगा।

दूसरे दिन जब वह पहरा देने आया तो आते ही उसने मुझे नमस्कार किया और फिर इधर उधर देखकर जँगले के बिलकुल निकट आकर कहने लगा, "बाबू जी' इसके बारे में किसी से कहियेगा नहीं। हमारी नौकरी जाती रहेगी।"

मैंने कहा, "तुम बेफ़िक्र रहो। हम गरीब आदमी को परेशान नहीं करते हैं।" उसके पश्चात् मैं सोचने लगा कि किस प्रकार इस आदमी से काम निकाला जाय।

उस दिन दोपहर को, उसकी ड्यूटी में ही, जेल का एक साथी मुझे थाने में खड़ा दिखाई पड़ा। वह दूर खड़ा हुआ मेरी तरफ़ देख रहा था, लेकिन पास आने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी। सिपाही को अपने पास बुलाकर मैंने कहा, 'देखो, वे हमारे साथी, मुझसे मिलना चाहते हैं। तुम रोकना नहीं। वे जल्दी ही यहाँ से चले जाँयगे। कोई वैसी बात नहीं होगी। तुम्हारे ज़रा सा इशारा करते ही वे यहाँ से चले जाँयगे। अगर किसी ने देख भी

लिया तो मैं उनसे कह दूँगा कि वे कह दें, कि उनकी साइकिल खो गई है, उसी की खोज में आये थे।"

इसके बाद मैंने इशारा करके उस साथी को अपने पास बुला लिया। वह एक दिन पहिले जेल से पैरोल पर आया था। वह बहुत घबराया हुआ था। मैंने उससे कहा, 'डरो मत' यह सिपाही तुमसे कुछ नहीं कहेगा। अगर किसी दूसरे ने देख लिया तो तुम यह कह देना कि सदर के पोस्ट आफ़िस से मेरी एक साइकिल चली गई है, उसी को खोजने आया था।"

उसने मुझे बताया कि उसे आँखों के रोग के कारण एक महीने की पैरोल मिल गई है और वास्तव में अब वह छूट ही गया है। अब फिर वापिस जाने का कोई सवाल उठेगा ही नहीं।

मैंने कहा; 'तुम्हें, एक काम करना है। कल दोपहर के वक्त ही तुम यहाँ चले आना। उस समय यहाँ कोई नहीं रहता और इसी सिपाही की ड्यूटी होती है। मैं तुम्हारे लिये खत लिख कर रख लूँगा। एक खत, तुम यहाँ एक दोस्त को दिखा देना, वह तुम्हें रास्ते के लिये रुपये दे देगा और दूसरे खत तुम्हें इलाहाबाद ले जाने होंगे। वहाँ उन ख़तों को देकर, वहाँ की खबर तुम मुझे लाकर दे देना। अच्छा, अब तुम चले जाओ। बस, कल आना।"

उसके चले जाने के बाद, थोड़ी देर तक मैं कोठरी में टहलता रहा और फिर जंगले पर आकर मैंने सिपाही को आवाज़ देकर पास में बुलाया। मेरा साथी, मिलते समय सिगरेट का एक पैकेट मुझे दे गया था। उसमें से एक सिगरेट निकाल कर मैंने सिपाही को दी और एक खुद पीना शुरू कर दी। सिगरेट पीने के बाद सिपाही बहुत खुश होते थे। दो चार दम मारने के बाद मैंने सिपाही से कहा, 'दोस्त, एक काम अब तुम हमारा भी कर दो।"

उसने जरा सकुचाकर पूछा, 'कहिये, क्या काम करवाना चाहते हैं ?"

मैंने कहा, "देखो, एक पैंसिल और एक काग़ज तुम कहीं से लाकर दो। मुझे घर बहुत ज़रूरी चिट्ठी लिखनी है। घर वाले बहुत परेशान हो रहे होंगे।"

वह मेरी बात को सुन कर थोड़ी देर तक खड़ा हुआ सोचता रहा। इस बीच में उसने सिगरेट में खूब खींच खींच कर तीन चार दम लगाये। उसे चिंतित देखकर मैंने कहा, "देखो मैं कोई ऐसा काम नहीं करूँगा जिससे तुम्हारे पर कोई आँच आये।"

उसने कहा, 'अच्छा, मैं आपके लिये पैंसिल काग़ज़ ला दूँगा, लेकिन आप उसे छिपाकर रखियेगा। आप खुद ही जानते हैं कि मालूम होने पर मेरी क्या हालत हो सकती है।"

थोड़ी देर बाद वह टहलता हुआ एक तरफ़ को गया और फिर लौट आया। जँगले की तरफ़ को पीठ करके वह खड़ा होगया और अपने नेकर की जेब में से एक पैंसिल और कुछ लिपटा हुआ काग़ज़, पीछे को हाथ करके उसने मुझे दे दिया।

उस दिन लोगों की आँख बचा बचाकर मैंने तीन पत्र लिख डाले। दो पत्र इलाहाबाद भेजने के लिये और एक पत्र यहीं पर एक मित्र को, जिसमें उससे बीस रुपया देने के लिये लिखा था। प्रत्येक पत्र के पीछे मैंने पत्र पाने वाले का पूरा पता लिख दिया था। पत्र लिखने के पश्चात् उनको कोट के कालर की सींवन खोलकर उसी में रख दिया।

उस दिन शाम को मैं, सी० आई० डी० वाले के इन्तजार में बैठा रहा; लेकिन, वह आया ही नहीं। अब धीरे धीरे गर्मी अधिक होती जा रही थी। मच्छर भी बहुत अधिक होगये थे। रात को बहुत देर में जाकर नींद आती थी।

× × ×

अगले दिन एक सी० आई० डी० वाला जो डी० एस० पी० के साथ आया करता था; आकर मेरे जंगले के सामने खड़ा होगया। उसने

बाद वह बोला, "मुझे साहब ने भेजा है, आपको किसी चीज की जरूरत तो नहीं।"

मैंने कहा, "नहीं मुझे कुछ नहीं चाहिये।"

इसके बाद वह फिर कुछ देर तक जँगले पर खड़ा रहा। उसके बाद बोला, "साहब, मेरी साइकिल का फ्रीव्हील खराब होगया है। यहाँ पर बहुत से फ्रीव्हील पड़े हुए हैं। इनमें से एक अगर मिल जाय तो काम चल जाये।"

मैंने कहा, "तुम्हारा नाम क्या है? बताओ, मैं शाम को तुम्हारी शिकायत करूँगा।"

वह घबड़ा गया और मुझसे माफी माँगने लगा। वास्तव में दिल्ली की पुलिस और यू० पी० की पुलिस में बहुत फर्क था। इसी प्रकार यहाँ की कोतवाली में जो लोग पकड़ कर लाये जाते थे वे प्रायः कसूरवार भी नहीं होते थे। दारोगा और सिपाही उनको कुछ रुपया लेने के लिये पकड़ लाते थे और प्रायः पर्याप्त रुपया पाने के बाद उन्हें छोड़ भी देते थे। दिल्ली में जितने लोग पकड़ कर आते थे, वास्तव में वे कुछ न कुछ जुर्म करके ही आते थे।

दोपहर को ठीक एक बजे वह साथी वहाँ खड़ा दिखाई पड़ा। सिपाही को बुलाकर मैंने कहा, "देखो, वे मुझसे मिलने आये हैं उनको रोकना नहीं।" और फिर इशारा करके मैंने उसे अपने पास बुला लिया। खत मैंने पहिले से ही निकाल कर कुर्ते के नीचे छिपा लिये थे। उसके जँगले पर आते ही खत मैंने उसे दे दिये। खत लेते हुए उसके हाथ काँप रहे थे। खत लेकर उसने कुर्ते के नीचे अपनी पेंट में रख लिये। उसके बाद मैंने संक्षिप्त में उसे उन खतों की बाबत बता दिया कि उनमें से एक खत तो यहा पर एक मित्र को देना है जिससे उसे ।कराये के रुपये मिल जायेंगे और उसके पश्चात् दो खत इलाहाबाद ले जाने हैं। उन खतों की पीठ पर पूरा पूरा पता लिखा हुआ है। इसके अतिरिक्त और भी बातें मैंने उसे बता दीं जिससे खतों को

ठीक स्थान पर पहुँचाने में उसे अधिक परिश्रम न करना पड़े। सब बातों को बहुत जल्दी खत्म करके मैंने कहा, "अच्छा, अब तुम चले जाओ और आकर मुझे सब बातें बता देना।"

वह नमस्कार करके वहाँ से चला गया। सिपाही बरामदे के दरवाजे पर जाकर खड़ा होगया था और यह देख रहा था कि अगर कोई आने वाला व्यक्ति दिखाई पड़े तो वह उसकी सूचना किसी न किसी रूप में मुझे दे दे। उस साथी के चले जाने के बाद वह भी लौट आया और उसने फिर पहरा देना शुरू कर दिया।

पत्र दे देने के बाद जी बहुत हल्का होगया था। मेरा एक आवश्यक फर्ज पूरा होगया था। बहुत देर तक कोठरी में इधर से उधर, बिस्तर को बचाते हुए, टहलता रहा। वहाँ पर टहलने के लिये बहुत थोड़ी जगह थी; मुश्किल से तीन कदम हो पाते थे।

उस दिन भी सी० आई० डी० वाला सवाल पूछने नहीं आया।

× × ×

दो तीन दिन बाद फिर से डी० एस० पी० सुबह के वक्त आगया। कोतवाली में बहुत भीड़ थी। इसलिये उस दिन बरामदे में न बैठ कर हम लोग पास में एक कमरे में जाकर बैठ गये। यह कमरा बहुत लम्बा था। उसके बीच में ब्लाईवुड का एक पार्टीशन लगाकर दो भाग कर दिया गया था। उस कमरे में बिजली का पंखा लगा हुआ था। डी० एस० पी० पसीने में तर था। उसने पंखा खोलने के लिये सिपाही से कहा और सवाल पूछने का कार्य आरम्भ हुआ।

उसने पूछा, "तुम यूनिवर्सिटी में काम करते थे?"

मैंने कहा, "हाँ, इसमें कोई शक नहीं कि मैं काम करता था।"

वह कहने लगा, "देखो, हम लोग भी समझदार हैं। लेकिन, हम कांग्रेस के ढंग को ठीक नहीं समझते। अगर हमको यह विश्वास होजाय कि इस तरह से जरूर आजादी मिल जायगी तो हम भी शामिल हो सकते हैं। फिर एक सवाल मुसलमानों का है। अगर सरकार

कांग्रेस के साथ समझौता कर भी लेती तो मुसलमान तो फिर भी अपने को गुलाम ही समझते।"

मैंने कहा, "आप तो मुस्लिम लीग के ही तर्कों को दुहरा रहे हैं। आजकल की दुनिया बहुत आगे बढ़ गई है। आज की दुनियाँ में लड़ाइयाँ धर्म को लेकर नहीं होतीं। इनका वास्तविक कारण आर्थिक परिस्थितियाँ होती हैं। यह बहुत पुराने काल की चीज थी कि धर्म के आधार पर झगड़े और लड़ाइयाँ हुआ करती थीं। वास्तव में उस काल में आर्थिक समस्यायें धर्म के अन्तर्गत ही आजाती थीं।"

"यह तो हमारी बदकिस्मती है कि हिन्दुस्तान में अब भी धर्म पर झगड़े होते हैं। इसका मुख्य कारण हमारी जहालत भी है। यह इस बात को प्रदर्शित करता है कि हम अभी दुनियाँ से कितने पीछे हैं।"

"देखिये, ये दो महायुद्ध हुए। लेकिन इनका वास्तविक कारण धर्म नहीं था। यदि धर्म इसका वास्तविक कारण होता तो जर्मन ईसाई, फ्रांस के या इङ्गलैण्ड के ईसाई का गला क्यों घोंटता? अगर धर्म के प्रचार के लिए वह लड़ता तो दुनिया के सारे ईसाई मिल कर मुसलमानों को या हिन्दुओं को मारने का प्रयत्न करते।"

"आज की दुनियाँ का झगड़ा तो अमीर और गरीब का झगड़ा है। शासक और शासित का झगड़ा है। वैज्ञानिक युग में प्रत्येक मनुष्य बराबरी का हक चाहता है। आज क्यों हिन्दू मुसलमान में झगड़े होते हैं? इसका कारण यह है कि दोनों भूखे मरते हैं और दोनों यह समझते हैं कि मैं दूसरे के कारण भूखा मर रहा हूँ।"

"अगर राष्ट्र की हुकूमत इस बात का एलान कर दे कि कोई भी इन्सान भूखा नहीं मरेगा। सब लोगों से काम लिया जायगा और सब लोगों के खाने का और रहने का हम इन्तजाम करेंगे तो इसमें झगड़े की कोई गुञ्जाइश ही नहीं। रूस में भी तो सैकड़ों कौमें हैं, वहाँ भी तो बहुत सी भाषायें बोलीं जाती हैं, लेकिन वहाँ पर तो सब लोग मिल कर काम करते हैं। अलग अलग ढपली और अलग अलग राग नहीं

अलापते। यही कारण है कि रूस इतनी जल्दी इतना शक्तिशाली देश हो गया। अगर वहाँ भी छोटे छोटे पाकिस्तान होते तो हिटलर की मुश्किल बहुत आसान हो जाती।"

पार्टीशन की दूसरी तरफ के कमरे के हिस्से से किसी को जोर जोर से पीटने की आवाज आने लगी। वहाँ का दारोगा एक कैदी को जोर जोर से घूँसे और चाँटें मार मार कर कह रहा था, "बता बे;" फिर एक घूँसे और चाँटे की आवाज आती और फिर "नहीं, बतायेगा" की आवाज। इसी प्रकार घूँसों के बाद बहुत से "सभ्य" कर्कश शब्द सुनाई पड़े। पिटने वाला व्यक्ति बड़ी कातर आवाज में चिल्ला कर कह रहा था, "दारोगा जी, मर गया; माफ कर दीजिये, हाय रे, नहीं, नहीं नहीं हुजूर............।"

बातों का सिलसिला टूट गया था। डी० एस० पी० ने अपना सिर नीचा कर लिया था। थोड़ी देर बाद आवाज के शान्त हो जाने पर वह बोला, "कुछ लोग मार पीट से काम लेते हैं लेकिन मैं तो ऐसा व्यवहार नहीं करता।"

मैंने कहा, "अधिकतर लोग ऐसा ही करते हैं। इलाहाबाद में रशीद अली ने तो शहर के माननीय व्यक्तियों और कालिज के प्रोफेसरों तक को बिना पीटे नहीं छोड़ा।"

बातों का सिलसिला जो बीच में टूट गया था फिर से प्रारम्भ हो गया। वह बोला, "तो फिर, आप में और कम्युनिस्टों में क्या फर्क है? वे लोग भी तो यही कहते हैं। लेकिन वे लोग तो इस समय में सरकार की मदद कर रहे हैं और आप लोग बगावत कर रहे हैं।"

मैंने कहा, "कम्युनिस्टों में और हम में यह फर्क है, कि कम्युनिस्ट कहता है "पहिले रूस, फिर हिन्दुस्तान और फिर दुनिया" और हम कहते हैं, "पहिले हिन्दुस्तान, फिर दुनिया और फिर रूस।" बस फर्क इतना ही है। देखने में बहुत छोटा फर्क है लेकिन इसको अगर समझा जाय तो बहुत बड़ा अन्तर है।"

इसी तरह की बहुत सी बातें उससे होती रहीं। उसके बाद उसने अपनी जेब से दो कार्ड निकाले जिनमें संक्षिप्त में उसने मेरे बारे में कुछ बातें लिख रखी थीं। थोड़ी देर तक उनको पढ़ने के बाद वह बोला, "देखिये, केशवदेव मालवीय के एक साथी ने बताया है कि आप केशवदेव के साथ काम कर रहे थे और प्रान्त में पर्चे भेजने का काम आपको सौंपा गया था।"

मैंने कहा, "यह मैं नहीं जानता, किन साहब ने ऐसी गलत बात मेरे बारे में कह डाली। मैं तो मालवीय जी से आज तक नहीं मिला। हालाँकि, चाहता जरूर था कि उनसे एक बार मिल लूँ। लेकिन जब मैं इलाहाबाद गया तो वे प्रायः इलाहाबाद से बाहर ही थे।"

इसी प्रकार वह अन्य साथियों का नाम लेकर बहुत सी बातें बताता रहा। उनमें से कुछ सत्य थीं और कुछ बढ़ाकर बताई गई थीं। अन्त में आकर बात एक पैम्फलेट पर रुक गई। वह पैम्फलेट गांधी जी के अनशन के समय का था। वह कह रहा था, "वह पैम्फलेट तुम्हारा ही लिखा हुआ है। तुम्हारा उस पर नाम है।"

मैंने कहा, "भला आप ही सोचिये कौन आदमी ऐसा होगा कि अपना नाम देकर अपने को फँसवा दे। यह आपका बिलकुल गलत ख्याल है।" लेकिन वह मेरी बात को मान नहीं रहा था। एक बात अवश्य थी वह दिल्ली के सी० आई० डी० वाले से अधिक सभ्य था। उसके व्यवहार में भी अधिक कटुता नहीं थी।

दोपहर को लगभग एक बजे के उसने सिपाही से मुझे ले जाने के लिये कहा।

× × ×

यह मई का दूसरा सप्ताह था। दिन में लू चलने लगी थी। तेल के पराठे खाने से तबियत बहुत खराब हो गई थी। मैंने एक वक्त खाना शुरू कर दिया था। एक वक्त मैं दही की लस्सी मँगा लिया करता था। बाहर बाल्टी का पानी बहुत गर्म लगता था और बार

बार प्यास लगती थी और जब मैं संतरी से पानी पिलाने के लिये कहता था तो उसको बहुत बुरा लगता था। एक दो बार के कहने पर तो वह प्रायः टाल ही जाता था मानो उसने सुना ही न हो। इसलिये लस्सी के कुल्हड़ों को मैंने धोकर रख लिया था। उन्हीं में एक बार पानी भरवा लेता था और फिर दिन भर वही पानी पीता था।

दोपहर के बाद उस कोठरी में धूप आ जाती थी और जँगले से दूर हटने के लिये स्थान नहीं था। दिन भर पसीना आता रहता था। और रात तो और भी मुश्किल से कटती थी। एक तो मच्छर इतने अधिक हो गये थे कि वे ही बेहद परेशान करते थे और फिर मई की गर्मी। कोठरी में बैठे बैठे जी घबराने लगता था। पसीने के मारे तबियत परेशान रहती थी और कोई चीज़ हवा करने तक को नहीं थी। और फिर रात को कोठरी में भरा साइकिलों के लोहे का ढेर गर्मी का वितरण करता था। रात को लगभग दो बजे तक किसी तरह भी नींद नहीं आ पाती थी। दो बजे भी, जब मैं सोता था तो एक तौलिया भिगो कर सिर पर लपेट लेता था और एक चादर भिगो कर ओढ़ लेता था। तब कहीं जाकर थोड़ा सो पाता था।

रात को लेटे लेटे बहुत से विचार मन में आते रहते थे। कभी सोचता था कि ये लोग हिन्दुस्तानी होकर भी क्यों संगदिल हो गये हैं? क्या लोगों को यातना देते वक्त इन्हें तनिक भी इस बात का अनुभव नहीं होता कि दूसरे को इससे कितना कष्ट होता है? और जो पकड़ कर आते हैं वे अपने लिये कुछ नहीं कर रहे हैं, वे तो सारे हिन्दुस्तान के लिये कर रहे हैं और सारे हिन्दुस्तान में तो ये खुद और इनके बच्चे और रिश्तेदार भी शामिल हैं।

फिर ख्याल आता—अगर इन लोगों को भी पकड़ कर इसी तरह, इस गर्मी के मौसम में बन्द कर दिया जाय। अन्य राजनीतिक कैदियों के समान पीटा जाय और फिर इनके बच्चों को बिना घर बार

का अनाथ करके अपने भाग्य पर संसार में भटकने के लिये छोड़ दिया जाय, तो इन्हें कैसा लगेगा ?

और फिर ख्याल आता महायुद्ध का। देखो, कुछ दिन पहिले राष्ट्र कैसे सुख चैन से रह रहे थे। आपस में मिल कर खेल करते थे। एक दूसरे के देश को देखने जाते थे। एक दूसरे से मैत्री करने के लिये लालायित रहते थे। कितने प्रेम सम्बन्ध आपस में स्थापित हो जाते थे। और फिर, एक ही रात्री में मनुष्य का वह ईश्वरीय रूप कैसा विकृत हो जाता ! खाकी वर्दी में छिपा मानुषी जानवर किस भयङ्करता से, किस घृणा से, किस आवेश से वार करने लगता और पागलों की तरह खून का प्यासा हो घूमने लगता ! अपने भूतकाल के सम्बन्ध को बिलकुल भूलकर। जैसे उसका कभी अस्तित्व ही न रहा हो !

× × ×

दो तीन दिन बीच में छोड़कर वह फिर सवाल पूछने आया। वही पुरानी बातें थीं और उसी प्रकार उनका उत्तर मैं देता रहा। दो घंटे बैठे रहने के बाद उसने मुझे कोठरी में ले जाने का हुक्म दे दिया।

कोठरी में बंद होने के बाद वह जंगले पर आकर खड़ा होगया। उसे खड़ा हुआ देखकर मैं भी उसकी तरफ़ देखने लगा। एक हाथ से जंगले की सलाख पकड़े हुए वह बोला, "एक बात मैं जानना चाहता था, वही आपने नहीं बताई। हमारा अफ़सर बार बार कहता है कि वह पैम्फलेट तो उनका ही लिखा हुआ है। ऐसी हिन्दी तो वही लिख सकते हैं।"

मैं जानता था कि उसका अफ़सर एक अंग्रेज़ है। मैंने कहा, "आपका अफ़सर हिन्दी जानता भी है ? भला वह हिन्दी के बारे में अपनी राय कैसे ज़ाहिर कर सकता है ?"

वास्तव में वह मुझे धोखा देना चाहता था लेकिन वह खुद फँस गया था। वह कुछ शर्मा गया। इस बात को वहीं छोड़कर कहने लगा

"मुझे तो कुछ अधिक आपसे पूछना नहीं था, मैंने इलाहाबाद के लोगों को लिख दिया था, अगर उनको आपसे कुछ ज्यादा बातें पूछनी हों तो वे वहाँ बुलावें। उनके जवाब की ही इन्तज़ारी कर रहा हूं, नहीं तो आपको वापिस जेल भेज देता। मेरा तो कोई काम है नहीं।"

इतना कहकर वह वहाँ से चला गया।

× × ×

दो महीने समाप्त होने में केवल ३ दिन बाकी रहे थे। रोज़ाना दिन गिनता रहता था कि कब यह अवधि पूरी होगी। जैसे जैसे दिन कम रहते जाते थे उतनी ही मुश्किल से कटते, ऐसा लगता था जैसे दिन बहुत लम्बा होगया हो।

डी० एस० पी० के चले जाने के बाद फिर से चिंता छागई। यहाँ पर आकर स्थान और व्यक्तियों से परिचित होगया था। अब कहीं फिर से इलाहाबाद जाना पड़ा तो फिर से नई पारस्थितियों का मुकाबला करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त इलाहाबाद में तो रशीदअली से मुलाकात होगी। उसको बहुत परेशान किया था और अब वह उन सबका बदला लेगा। उसने तो किसी को भी बिना पीटे नहीं छोड़ा।

इलाहाबाद से चलने से पहिले, यूनीवर्सिटी के एक प्रोफेसर ने मेरे पास कहलवा कर भेजा था, "उससे कह देना कि वह यहाँ से चला जाय, नहीं तो कोतवाल उसको कच्चा चबा जायगा।" और अब वह इस बेबसी की हालत का पूरा लाभ उठायेगा।

इसी तरह के बहुत से विचार आते रहे। फिर कुछ दिन पहिले उस पीटे जाने वाले व्यक्ति के कातर शब्द याद आ गये। उफ़ ! कैसी, दयनीय और अवनत अवस्था वह हो जाती है ! कितना बुरा होगा ! लेकिन इससे बचने का भी तो कोई चारा नहीं।

इस चिंता में उस रात बिलकुल नींद नहीं आई। दूसरे दिन बहुत देर तक टहलता रहा लेकिन कुछ समझ में नहीं आता था

क्या किया जाय। बहुत देर तक घूमते रहने के कारण पैर थक गये थे। उसी समय एक ख्याल दिल में आया।

मैंने वहाँ पड़े साइकिलों के ढेर में से एक लोहे की मोटी सी, १ फुट की, सलाख निकाली। उसको फिर धीरे धीरे पत्थर पर घिसना शुरू किया। जब उसकी नोक होगई तो उसके पिछले हिस्से पर एक तार को बांधकर हत्था जैसा बना लिया। उसको अपने लिहाफ़ की रुई में छिपाकर फिर आराम से लेट गया।

मैंने सोच लिया था कि पहिले दिन तो जब वह पीटेगा तो पिट लूँगा। लेकिन दूसरे दिन उससे कहूंगा कि अच्छा, मेरे हाथ खोल दो मैं सब कुछ लिखे देता हूँ। उसी समय इस हथियार से प्रहार करके उसकी दोनों आँखें फोड़ दूँगा। उसके बाद जो कुछ होगा वह सह लिया जायगा। प्रतिकार के पश्चात् यातना सहल हो जायगी।

लेकिन दिन और भी लम्बे हो गये थे। कागज़ जो सिपाही दे गया था अब भी थोड़ा बाकी था। कभी कभी बेहद चिंता आती और कभी फिर घृणा और क्रोध से सारा मस्तिष्क गर्म हो जाता। ऐसी ही एक अवस्था में मैंने कागज़ और पेंसिल निकाली और लिखना शुरू कर दिया।

"हिन्दुस्तान को गुलाम बनाने वालों की कौम सदा के लिये मिटा दी जायगी, नेस्तनाबूद कर दी जायगी। समाज के शरीर में, गद्दार, महामारी के कीड़े हैं। या तो ये कीड़े ही जिन्दा रह सकेंगे और समाज को मार डालेंगे, या-समाज की रक्षा के लिये कीड़ों को मार डाला जायगा। यही सबसे बड़ी दया, सबसे बड़ी अहिंसा, और सबसे बड़ा न्याय होगा।"

"इनके हाथ, देश के नौजवानों, बूढ़ों और मासूम बच्चों के खून से रंगे हुए हैं! ये दुनियाँ के सबसे बड़े पापी हैं! शहीदों का खून अभी गीला है, आज भी वह देखना चाहता है कि गद्दारों का क्या हाल हुआ? क्या वे अब भी सुख चैन से रह रहे हैं? शहीदों की आत्मा

उत्सुक है यह देखने के लिये कि न्याय ने क्या किया? क्या फिर से बेगुनाह, सच्चे लोगों को ही सज़ा दी गई या भारत का सच्चा इतिहास, भारत के दुःख के कारणों को दूर करके प्रारम्भ होगया।"

"हिन्दुस्तान की आज़ादी हासिल करने और फिर उसको कायम रखने के लिये तीन बातें आवश्यक हैं! एक—गद्दारों को मिटादो। दूसरी—गद्दारों को मिटादो। तीसरी—गद्दारों को मिटादो, और फिर—गद्दारों को मिटादो।"

लिखते लिखते क्रोध और घृणा से हृदय की गति तेज हो गई। अधिक लिखने के लिये पेंसिल रुक गई थी। बिस्तरे पर बैठकर मैं सोचता रहा, इस लिखने से क्या होगा! यह तो सब कुछ वास्तव में करना होगा। अकेले और सबको साथ लेकर।

× × ×

तीसरे दिन संध्या के समय सी० आई० डी० के दो इन्सपेक्टर और तीन चार सिपाही मुझे ले जाने को आ गये। मैंने उनसे पूछा कि कहाँ ले जा रहे हैं। उन्होंने बता दिया कि जेल ले जाना है। आज दो महीने और एक दिन पूरा हो गया था।

हमारी मोटर हजरतगंज से निकली। वहाँ कितनी चहल पहल थी! सब लोग चैन से घूम रहे थे। एंग्लो इण्डियन लड़कियाँ, टोमियों की कमर में हाथ डाले मस्त चाल से चल रहीं थीं। दुनिया के सब लोग अपने कार्य में व्यस्त थे जैसे कुछ हुआ ही न हो। सड़क की बत्तियाँ जल गई थीं। सिनेमा घरों से संगीत की ध्वनि आ रही थी।

दिवस का अन्त समीप था।
